ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-2* March- 2021
Innovation The Research Concept

भारत में पर्यावरणीय मुद्दे
Environmental Issues in India

Paper Submission: 03/03/2021, Date of Acceptance: 23/03/2021, Date of Publication: 24/03/2021

सारांश

पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन 21वीं सदी की सबसे जटिल चुनौतियों में से एक है। इसके प्रभाव से कोई देश अछूता नहीं है, न इस समस्या से कोई एक देश अकेले निपट सकता है। पर्यावरण का विकास आपदा और निर्धनता से निकट का सम्बन्ध है। सतत और समावेशी विकास में इसकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारत में पर्यावरणीय मुद्दों से सम्बन्धित प्रश्न समय–समय पर उठते रहे हैं, प्रस्तुत आलेख में इनकी चर्चा की गई है।

Environment and climate change is one of the most complex challenges of the 21st century. No country is untouched by its impact, nor can any one country deal with this problem alone. Environmental development is closely related to disaster and poverty. Its role is very important in sustainable and inclusive development. Questions related to environmental issues in India have been raised from time to time, they have been discussed in the present article.

मुख्य शब्द : पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग।
Environment, Climate Change, Global Warming.

विजय श्री
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
जय नारायण व्यास
विश्वविद्यालय,
जोधपुर, राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

उत्तराखंड के ऊँचे पर्वतों पर नंदादेवी चोटी की ढलान पर झूलते ग्लेशियर का एक हिस्सा खिसका तो 7 फरवरी की अचानक आयी विनाशकारी बाढ़ ने हिमालय के नाजुक पर्यावरण संतुलन से छेड़छाड़ के प्रति खतरे की घंटी बजा दी। राज्य के चमोली जिले में जोशीमठ के ऊपर रैणी गांव के पास ग्लेशियर के अचानक टूटने से अलकनंदा नदी की सहायक नदियों धौलीगंगा और ऋषिगंगा में भारी बाढ़ के साथ गाद, मिट्टी, चट्टान नीचे की ओर बहे तो प्रमुख पनबिजली परियोजनाओं सहित रास्ते में पड़ने वाले इलाकों में भारी तबाही हो गयी।[1] इससे जून 2013 में केदारनाथ तीर्थ के पास बादल फटने से आयी बाढ़ के बाद राज्य में हुए जल प्रलय की यादें ताजा हो गयीं। बाढ़ ने एन.टी.पी. सी. की तपोवन विष्णुगाड स्थित 520 मेगावाट की पनबिजली परियोजना ध्वस्त हो गयी और निर्माणाधीन ऋषिगंगा छोटी विद्युत परियोजना, सड़कों, पुलों के साथ–साथ घरों का तो नामोनिशान मिट गया।[2]

हालांकि इस घटना से किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचना जल्दबाजी होगा लेकिन कुछ विशेषज्ञ ग्लोबल वार्मिंग और उत्तराखंड की पारिस्थितिकी में निरंतर गिरावट को त्रासदी की वजह बता रहे हैं। इस घटना ने नंदादेवी, बद्रीनाथ और केदारनाथ समेत राज्य के ऊपरी क्षेत्रों में अनियंत्रित विकास कार्यों को सुर्खियों में ला दिया है। इन क्षेत्रों में बनावट ऐसी है कि चाहे वह निर्माण गतिविधि हो या जलवायु परिवर्तन, यहां की सभी नदियों में अचानक बाढ़ आने की आशंका बनी रहती है। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के अंतर सरकारी पैनल (प्च्छ) की रिपोर्ट सहित कई अध्ययनों में इन क्षेत्रों में बर्फ के तापमान प्रोफाइल के बढ़ने की बात कही गयी है। अब यह शून्य से 2 डिग्री सेल्सियस नीचे है, जबकि एक समय शून्य से 20 से लेकर 6 डिग्री सेल्सियस नीचे तक का तापमान हुआ करता था। इससे बर्फ के जल्द पिघलने की आशंका काफी बढ़ जाती है।[3]

इन घटनाओं से यह सबक लिया जा सकता है कि पर्यावरण, विकास, जलवायु परिवर्तन और आपदाओं के जोखिम से सम्बंधित मुद्दे पंचतत्व में असंतुलन के कारण उभर रहे हैं। अनियोजित मानवीय हस्तक्षेप इसका एक प्रमुख कारण है। पर्यावरण के प्रति खतरा अब काफी बढ़ गया है। पर्यावरण के प्रति बढ़ते खतरे से कमजोर और गरीब वर्गों की स्थिति और भी जटिल हो गयी है। इस परिस्थिति में पर्यावरण पर समग्र रूप से विचार करने की आवश्यकता है।

ISSN - 2348-2397
UGC CARE LISTED JOURNAL
SIL
शोध सरिता
January-March, 2021
Vol. 8, Issue 29
Page Nos. 172-175
AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

भारत में खाद्य सुरक्षा के समक्ष चुनौतियां एवं सुझाव

डॉ0 विजय श्री*

शोध सारांश

देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना नितांत आवश्यक है, जिससे कोई भी व्यक्ति भूखे पेट ना सो सके, साथ ही खाद्यान्न के क्षेत्र में भारत दुनिया का नेतृत्व कर सके। अतः भविष्य में खाद्य सुरक्षा के लिए असरदारक कार्य व्यापक तौर पर करने की आवश्यकता है। एक तरफ जनसंख्या बढ़ रही है दूसरी तरफ कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल भी घट रहा है। आज समूचा विश्व कोविड–19 महामारी की वजह से बड़े भारी संकट का सामना कर रहा है। यह 1930 के दशक की महामंदी और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व अर्थव्यवस्था के लिए सबसे बड़ा आघात है। विश्व के सभी देशों को स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, पोषण और खाद्य सुरक्षा आदि मोर्चों पर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इसका गंभीर असर भारत की खाद्य सुरक्षा के समक्ष भी है। प्रस्तुत पत्र में खाद्य सुरक्षा के समक्ष विभिन्न चुनौतियों एवं विभिन्न सुझावों का उल्लेख किया गया है।

Keywords: खाद्य सुरक्षा, मूल अधिकार, जलवायु परिवर्तन, खाद्य अपव्यय, खाद्य प्रसंस्करण

खाद्य सुरक्षा की परिभाषा एक लंबे समय अवधि में विकसित हुई है। वैश्विक खाद्य संकट के मद्देनजर, परिकल्पना के रूप में, खाद्य सुरक्षा का उद्भव 1970 के दशक के मध्य में हुआ। आरंभिक ध्यान उपलब्धता सुनिश्चित करने तथा कुछ हद तक अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर बुनियादी अनाज की कीमत में स्थिरता पर दिया गया। उसके बाद 80 के दशक के आरंभ में खाद्य सुरक्षा के दायरे में मांग को भी लाने के लिए इसका विस्तार किया गया। 90 के दशक में खाद्य सुरक्षा, पोषाहार, आहारीय जरूरतें और भोजन की प्राथमिकताओं जैसे मुद्दों पर भी खाद्य सुरक्षा के महत्त्वपूर्ण घटकों के रूप में विचार किया गया। खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट 'खाद्य असुरक्षा की स्थिति, 2001' में खाद्य सुरक्षा इस प्रकार परिभाषित है–"स्थिति जो पर्याप्त, सुरक्षित और पोषाहार तक हर समय सभी लोगों की शारीरिक, सामाजिक और आर्थिक पहुंच होने पर विद्यमान होती है जो सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए उनकी आहारीय जरूरतें और भोजन संबंधी प्राथमिकताओं की पूर्ति करती है।" भारतीय संदर्भ में लोगों की खाद्य सुरक्षा की बुनियाद संविधान में तलाशी जा सकती है। हालांकि वहां भोजन के अधिकार का कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। जीने का मूल अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रतिस्थापित किया गया है। इसकी व्याख्या उच्चतम न्यायालय ने की थी और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने इसे प्रतिष्ठा के साथ जीने के मनुष्य के अधिकार में शामिल किया है। इसमें भोजन और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं का अधिकार शामिल है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के तहत, अनुच्छेद 47 में कहा गया है कि राज्य अपने लोगों के पोषाहार और जीवन का स्तर सुधरेगा तथा अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों के रूप में सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करेगा। सरकार की योजना और नीति में खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने का पर ध्यान दिया गया है। खाद्य सुरक्षा का अर्थ व्यक्तिगत स्तर पर, किफायती कीमतों पर भोजन की पर्याप्त मात्रा के लिए, घरेलू मांग पूरी करने के साथ–साथ पहुंच के रूप में पर्याप्त अनाज की उपलब्धता है। राष्ट्रीय स्तर पर अनाज उत्पादन मे आत्म निर्भरता हासिल करना देश की प्रमुख उपलब्धियों में से एक रही है। परिवार के स्तर पर खाद्य सुरक्षा के मुद्दे से निपटने के लिए सरकार ने लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लागू किया जिसके तहत पात्र परिवारों को सब्सिडी पर अनाज उपलब्ध कराया जाता है। लोगों की खाद्य सुरक्षा करने के प्रयासों को और मजबूत करने के लिए सरकार ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 बनाया। यह खाद्य सुरक्षा के दृष्टिकोण में (कल्याण से अधिकार आधारित दृष्टिकोण) है। यह अधिनियम ग्रामीण आबादी के 75 प्रतिशत तथा शहरी आबादी के 50 प्रतिशत तक लोगों को लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत सब्सिडी पर अनाज प्राप्त करने का कानूनी अधिकार देता है। इस प्रकार देश की करीब दो तिहाई आबादी अत्यधिक सब्सिडी पर अनाज प्राप्त करने के लिए इस अधिनियम के दायरे में आ जाती है।[1]

*सहायक आचार्य – राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

12

महात्मा गाँधी की खादी की अवधारणा एवं महिला सहभागिता

डॉ. विजय श्री*

भारत की स्वतंत्रता के 70 साल से भी ज्यादा हो जाने के बाद अभी भी खादी दुनिया भर में लोगों को प्रेरित और हैरान कर रही है। साथ ही हाल ही में खादी विस्तार को अगर संकेत माना जाये तो देश में परिधान का अहम प्रतीक फैशन के जरिए अधिक आर्थिक बदलाव का औजार बनकर सामने आया है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग (के.वी.आई.सी.) ने वर्ष 2018–19 में खादी उत्पादों की बिक्री 28 प्रतिशत बढ़कर 3,21,513 करोड़ रूपये की होना बताया है। इस दौरान हाथ से बुने खादी वस्त्र का उत्पादन 16 प्रतिशत बढ़कर 1,902 करोड़ रूपये के स्तर पर पहुंचना बताया।[1]

पिछले वित्त वर्षों में ग्रामोद्योग के उत्पादों की बिक्री में भी बढ़ोतरी हुई है। हाल ही के वर्षों में खादी से जुड़े कपड़ों और अन्य चीजों के उत्पादन में जबरदस्त बढ़ोतरी इस बात की पुष्टि करती है कि खादी के परिधान सदाबहार हैं और इनकी पसंद तमाम तबके में है। डिपार्टमेंटल स्टोर्स के जरिये भी खादी की बिक्री में उल्लेखनीय बढ़ोतरी हुई है। साल 2015 से फरवरी 2018 के बीच 30,000 से भी अधिक चरखों का वितरण किया गया और इस तरह से 14 लाख रोजगार का सृजन हुआ।

पर्यावरण दिवस से लेकर योग दिवस तक दिल्ली के इंदिरा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर सबसे बड़ा लकड़ी का चरखा लगाने से लेकर अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे, बिहार के पूर्वी चंपारण (मोतिहारी) और नई दिल्ली के कनॉट प्लेस स्मारक के तौर पर स्टील का चरखा लगाए जाने तक कई प्रतीक ऐतिहासिक हैं। इसके अलावा खादी जागरूकता के लिए दक्षिण

* सहायक आचार्य – राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

ISSN - 2229-3620
UGC CARE LISTED JOURNAL
PIS
शोध संचार बुलेटिन
January-March, 2021
Vol. 11, Issue 41
Page Nos. 43-46
AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

वर्तमान समय में कौटिल्य के राजनीतिक विचारों की प्रासंगिकता

❑ डॉ० विजय श्री*
एकता सागर**

शोध सारांश

प्राचीन भारतीय चिंतन धारा में कौटिल्य का विशिष्ट स्थान है। कौटिल्य का ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' प्राचीन भारतीय राजनीति का सबसे स्पष्ट, वैज्ञानिक एवं विस्तृत ग्रंथ है, जिसमें राज्य, राजनीतिक संस्थाओं, प्रशासन और कूटनीति से संबंधित विचारों का वर्णन मिलता है। अर्थशास्त्र में वर्णित आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शासन और न्यायिक संबंधी विचार विश्व में सभी देशों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। हालांकि कौटिल्य के विचार तत्कालीन समय (राजतंत्र) आधार पर प्रस्तुत किए गए थे, जिनका उद्देश्य लोक कल्याण पर आधारित एक सुदृढ़ राज्य की स्थापना करना था। आज विश्व के अधिकांश देशों में लोकतंत्र स्थापित है जो राजतंत्र के मानकों से सर्वथा भिन्न है, परंतु यदि कौटिल्य के विचारों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन वर्तमान परिपेक्ष्य में किया जाए तो सकारात्मक और श्रेष्ठ परिणाम की प्राप्ति की जा सकती है। प्रस्तुत शोध पत्र में कौटिल्य के राजनीतिक विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिक होने का प्रयास किया गया है।

Keywords : अर्थशास्त्र, विजिगीषु, शक्ति, सिद्धि, षाड्गुण्य नीति, सप्तांग, लोककल्याण।

भूमंडलीकरण के इस दौर में वर्तमान समय में विश्व के समक्ष अनेक चुनौतियां और समस्याएं मौजूद हैं, जैसे बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार, पर्यावरण संकट, महिला अपराध, बाढ़, अकाल, भुखमरी, हिंसा और अपराधीकरण आदि। इन समस्याओं का सामना विश्व ही नहीं अपितु भारत भी कर रहा है। इन सभी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं अंतर्राष्ट्रीय संकटों और चुनौतियों का समाधान कौटिल्य द्वारा लिखित पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में दिखाई देता है।

अर्थशास्त्र की राजव्यवस्था राजनीतिक जीवन की व्यवहारिक समस्या से जुड़ी हुई है। कौटिल्य के सिद्धांत मात्र पुस्तकीय नहीं है अपितु उन्होंने अपने सिद्धांत का व्यवहारिक उदाहरण प्रस्तुत कर विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना की इसलिए कौटिल्य न तो काल्पनिक विचारक थे और ना ही प्रयोजनवादी। काल्पनिक विचारक जीवन के कठोर सत्य के प्रति आँख मूंद लेता है, वह कल्पना में, स्वप्न में तथा आदर्श में यथार्थ चुनौतियों का समाधान ढूंढता है। इसके विपरीत प्रयोजनवादी सिद्धांत विहीन एवं मर्यादा हीन हो सकता है। वह साधनों की पवित्रता पर ध्यान नहीं देता, उनका एक मात्र उद्देश्य लक्ष्य की प्राप्ति करना होता है। इनसे भिन्न कौटिल्य ऐसे विचारक हैं जो यथार्थ और वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित अपने विचार व्यक्त करते हैं और इन विचारों का उल्लेख हमें कौटिल्य द्वारा रचित ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में दिखाई देता है।[1] कौटिल्य द्वारा वर्णित प्रशासनिक व्यवस्था, गुप्तचर व्यवस्था, न्याय एवं दंड व्यवस्था इत्यादि का अवलोकन करने पर कौटिल्य का ग्रंथ सम–सामयिक प्रतीत होता है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों के संदर्भ में विदेश नीति, दूत व्यवस्था, मंडल सिद्धांत राष्ट्रों से व्यवहार करने हेतु षाड्गुण्य नीति के नियम वर्तमान अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अपनाए जा सकते हैं।

कौटिल्य राजा के लिए 'विजिगीषु' होने को कहते हैं। विजिगीषु से कौटिल्य का तात्पर्य ऐसे राजा से है जो सदैव अपने राज्य के विस्तार के लिए उत्साही है, आत्मशक्ति संपन्न हैं। कौटिल्य का मानना है कि शत्रु की तुलना में अपने को निर्बल समझने पर संधि (दो राजाओं का कुछ शर्तों का मेल हो जाना), यदि शत्रु की तुलना में स्वयं को बलवान समझा जाने पर विग्रह (शत्रु का कोई अपकार करना), यदि शत्रुबल और आत्मबल में कोई अंतर ना समझे तो आसन (उपेक्षा करना), यदि स्वयं को सर्वसंपन्न एवं शक्ति संपन्न समझे तो यान (चढ़ाई करना), यदि अपने को निराशक्त समझने पर संश्रय (आत्मसमर्पण) और सहायता की अपेक्षा समझने पर द्वैधीभाव (संधि–विग्रह दोनों से काम लेना) को अपनाना चाहिए। कौटिल्य का मानना है कि इस षाड्गुण्य नीति के तहत यदि किसी गुण को अपनाने से स्वयं के

*सहायक आचार्य – राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
**शोधार्थी – राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

Sarovar
ISSN: 0975-4520
GC Care Group-1 Journal)
Vol-24 No.01(II) January - March 2021

"WOMEN EMPOWERMENT: CONCEPT AND DIMENSIONS"

Dr. Nagendra Singh Bhati Assistant Professor, Department of Political Science
Rishabh Gahlot Assistant Professor, Department of Sociology Jai NarainVyas University, Jodhpur (Raj.)

ABSTRACT -

Development calls for empowerment of weaker section of our society, especially women who constitute one half population of our society, the key concern behind the notion of empowerment lies in the dynamics of sharing. Distribution and redistribution of power. We are living in twenty-first century but still women are socially segregated, economically deprived and politically dis-empowered, Empowering women means given them autonomy over their decisions, their work and income and making them economically independent. Women empowerment is a multi-faceted concept. A Beijing conference (1995) had identified a set of quantitative and qualitative indicators of women empowerment. Process of empowerment has social, economical and political aspects. Social empowerment demands change in ideology of society and providing then social assistance like pension schemes, mother and Child health care, provisions for maternity leaves, etc. Economic empowerment refers to budgetary reforms, tax rebates to working women, and economic assistance in the form of micro-credit system, support for self-help groups, etc. Political empowerment means participation of women in politics- at grass root level, state level or national level. Empowerment Of women calls for sensitive, empathetic and egalitarian initiatives by governmental and other social institutes. Moreover women can create an environment which is enabling for other women. Path of women empowerment grim and tough but situation is changing gradually. There is an urgent need for review of our efforts for women empowerment.

KEYWORDS- Empowerment Dynamics, Segregated Multi-Faceted, Quantitative, Qualitative, Budgetary, egalitarian.

Introduction

Women empowerment has become a dominant theme of modernsociety and progressive governance. Empowerment is a process of awareness and conscientiousness It aims at capacity-building, greater participation, effective decision making power, more control, ability to get what one wants and to influence others on our concerns, With reference to women, the dynamics of empowerment encompass their lives at multiple levels-family, community, market and the State, Empowerment also has psychological implications of making women conscious about asserting themselves, particularly in cultures which have thrived by assigning "gender-roles" to her.

The prevailing state Of low sex ratio, low rate of literacy, lack of professional training and access to information, lack of access advanced health care resources, low participation in decision making processes shows their under-privileged position in the society. The problem of women society has received the attention of democratic leaders and development practitioners since mid-1940s. A pertinent development in this regard took place in the post world-war II period, when many countries granted the right to vote to women. The United Nations pioneered and set up a commission to look in to the issue concerning women in society. In early 1970's the government of India also set up a committee on the status of women in society, In the recent years the Indian government has formulated and executed several plans and programs for women empowerment. The aim of this paper is to discuss the concept of empowerment, the need for women empowerment and to examine different facets of women empowerment.

Concept of Empowerment

According to Merriam Websters dictionary the word "empowerment" means to give official authority or legal power, and to promote self-actualization or influence The centrality of the notion of empowerment is to evolve the dynamics of sharing and distribution of power according to accepted laws, rules and standards, When we discuss about empowerment, two issues assume importance:

27/12/21 Nagendra Singh Bhati

धर्मनिरपेक्षता के भारतीय पहलू और भारतीय संविधान

नर्गिस खान

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

डॉ० नागेन्द्र सिंह भाटी

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

सार

धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को लोकतंत्र के प्रचार में शामिल किया गया है भारतीय संविधान का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखना है। संविधान के प्रावधान में धर्मनिरपेक्ष समाजों के गठन के लिए संविधान के अनुच्छेद 25 में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 25 धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार देता है। भारत के प्रत्येक नागरिक को यहां पूर्ण अधिकार है की वह अपने धर्म का पालन करें और अपने धर्म का प्रचार और प्रसार करें। लेकिन सार्वजनिक जीवन मेंगनागरिकों के बीच धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 28 के अनुसार राज्य निधि से संचालित कोई भी शिक्षण संस्थान धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं करेगा। अनुच्छेद 30 के अनुसार सभी अल्पसंख्यकों को शिक्षा स्थापित करने का अधिकार दिया गया है अपने धर्म और के मानदंड के अनुसार अपनी पसंद के संस्थान शिक्षा स्थापित कर सकेगा।

मुख्य शब्दः लोकतंत्र, धर्म, धर्मनिरपेक्षता,

परिचय

भारत को बहुसंस्कृतिवाद विरासत में मिला है। यहां कई धर्म और संस्कृति हैं। बहुसंस्कृतिवाद के कारण भारत की एक विशिष्ट पहचान दुनिया में है। एक राष्ट्र के निर्माण के लिए एक धर्म, एक संस्कृति, होना चाहिए। लेकिन भारत में यह अपवाद है। भारत में विभिन्न धर्म, विभिन्न संस्कृतियां एक साथ रहती है। फिर भी भारत एक राष्ट्र के रूप में बना हुआ है। भारत में बहुसंस्कृतिवाद के साथ-साथ सामाजिक सहिष्णुता समाज की रीढ़ है। भले ही लोग अपने धर्म और संस्कृति के अनुसार व्यवहार करते हैं, लेकिन एक दूसरे के धर्म और दूसरे की संस्कृति का सम्मान आज भी किया जाता है। भारत में सभी को धर्म और संस्कृति को बढावा देने का अधिकार है। भारतीय समाज को धर्म के बिना नहीं माना जा सकता, क्योंकि धर्म भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन गया है। आजादी के भारतीय संविधान ने राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सहिष्णुता को बनाए रखने के लिए धर्मनिरपेक्षता को गले लगाया है। निजी जीवन में लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता होगी। ऐसी सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता अवधारणा को स्वीकार किया जाता है। इसलिए भारतीय समाज की अखंडता जस की तस बनी हुई है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। इसलिए संविधान में सभी धर्मों का सम्मान करते हुए राजनितिक व्यवस्था द्वारा धार्मिक सहिष्णुता पैदा करना है। हमारे धर्म की स्वतंत्रता के साथ-साथ अन्य धर्मों की स्वतंत्रता का सम्मान करें और हमें सावधान रहना चाहिए कि हमारी स्वतंत्रता जनहित को बाधित न करे। हालाँकि, आज भारतीय समाज में धार्मिक कट्टरता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। मुख्य इस अध्ययन का उद्देश्य राष्ट्र निर्माण में धर्मनिरपेक्षता की भूमिका को समझना है। इस अध्ययन का एक अन्य उद्देश्य यह समझना है कि क्या है धर्मनिरपेक्षता और भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता का भविष्य।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थः

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य किसी धर्म विशेष को आश्रय नहीं देता है।

ब्रिटिश इनसाइक्लोपीडिया में, धर्मनिरपेक्षता को गैर-आध्यात्मिक के रूप में परिभाषित किया गया है।

धर्मनिरपेषता कोई नास्तिकता नहीं है बल्कि सभी धर्मों में एक समान आस्था है राज्य का स्वयं का कोई धर्म नहीं होता है। साथ ही, राजनीतिक व्यवस्था धर्म द्वारा शासित नहीं होगी। विभिन्न धर्मों के नागरिक राज्यों में रह सकते हैं। हर नागरिक अपने धर्म के अनुसार स्वतंत्र रूप से जीवन जी सकता है। यही धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है। भारतीय परंपरा, में धर्मरिपेक्षता को निम्नलिखित तीन विचारधाराओं में परिभाषित किया है।

1. एक, उदारवादी विचारधारा ने धर्मनिरपेक्षता की पष्चिमी अवधारणा का समर्थन किया है। राजनीति और धर्म पूरी तरह से अलग होना चाहिए। राजनीति धर्म से प्रभावित नहीं होनी चाहिए।

Nagendra Singh Bhati
27/12/21

Corruption and Black Money in Indian Politics

Paper Submission: 10/11/2020, Date of Acceptance: 25/11/2020, Date of Publication: 26/11/2020

Abstract

One never thought a day would come when India and its people would be free. Yet, freedom come. The freedom was from alien subjugation and like a monolith it has never been vibrant since its advent on August, 1947, as the teeming millions of people could not be salvaged from the myriad of misery, hunger, poverty, illiteracy, economic backwardness and deprivation of the means of livelihood.

The by-product of independence is the change in social taboos and customs, generally morals and morals have been adversely affected and vice and dishonesty have replaced virtue and probity in all spheres of life. We encounter everywhere political, communal, caste, class, creedal and language hostility. Every political party has blamed all other political parties of misusing and abusing power and indulging in cancerous corruption.

The Indian Constitution guarantees fundamental rights to its citizens-civil, political and legal in nature. None of these fundamental rights incorporate economic rights. The social and economic rights are incorporated in the Directive Principles of state policy, which is a unique feature of the IndianConstitution. Rights incorporated in this category cannot be legally enforced. Some Fundamental Duties were also incorporated in the constitution under Article 51 A through the 42 nd Amendment in 1976.

It is often argued by some that the Directive Principles of State Policy are mere normal or ethical concepts, but it is a mandate of the Constitution and it is the obligation cast on the state to follow the mandate. The view of Directive Principles cannot be under estimated. It is this Constitution under which elections are held and governments formed. Can the elected representatives refuse to act against its mandate? It is their prime duty to make honest efforts to achieve that goal.

Today, the foundations of the Constitution have been shaken by the folly of the people, the corruption of politicians and the privacy of public money running into several thousand crores of rupees. At this moment, when the nation is standing on the escalator of anarchy and corruption, right minded citizens cannot afford to stand frozen in disgust and dismay.

Keywords: Subjugation, Monolith, Vibrant, Myriad, Indian Constitution, Fundamental Right, Directive Principles, Folly, Corruption.

Nagendra Singh Bhati
Assistant Professor,
Dept. of Political Science,
Jai Narain Vyas University,
Jodhpur, Rajasthan, India

Dinesh Kumar Gehlot
Assistant Professor,
Department of Political Science,
Jai Narain Vyas University,
Jodhpur, Rajasthan, India

Introduction

Corruption: A Major Issue in India

Corruption in the public arena is not a new phenomenon, nor unique to India. It existed in ancient times, the middle ages and throughout history. Realistically speaking no country is free of corruption. The causes and types of corruption differ. It became widespread during and after the Second World War.

Corruption has been defined in many ways. The dictionary's definition of Corruption is simple: dishonesty and illegal behaviour by people in positions of authority or power. The World Bank defines corruption as the abuse of public power for private gain. In other words, accountability and abuse of power-are key issues in any discourse on corruption matters.

Corruption, like water, flows from higher level to the lower level. Its main spring is political leadership. The prevailing corruption in all aspects of national life in India is the end result of bad examples set by new democratic rajas and bad educational and economic policies. Corruption

Nagendra Singh Bhati,
27/12/21

RP1 135

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

ISSN 2348-3857
Impact Factor: 5.454

Research Reinforcement

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

रिसर्च रिइन्फोर्समेंट

Volume 8 Issue 1 May 2020 - October 2020

134

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A PEER REVIEWED INTERNATIONAL REFEREED JOURNAL)

Contents

S.No.	Particulars	Page No.
1.	Improving Master Teacher's Supervision of Teaching Practice of Postgraduate Diploma in Education Dr. W.M.S. Wanansinghe & Dr. F.M. Nawastheen	1
2.	A Comparative Study of Performance Level of Pupil Teachers between Pre and Post Period of Their Teaching Practice Dr. Pratap Singh Rana	6
3.	Gender Discrimination in Curriculum and Teaching Transaction: Measure to Eradicate Gender Discrimination Mrs. Abhilasha Jaiswal	11
4.	Evolution of Russia's Foreign Policy in Central Asia: A Critical Perspective Manoj Kr. Mahto	16
5.	Gender Equality: A Grundnorm to Achive Women Empowerment in India Pankaj Kumar	28
6.	Agganna Sutta (Digha Nikaya) Theory of Kingship Kajal Bitthu	35
7.	Sadhus With Swords: A Leaf From the History of Rajasthan Dr. Dinesh Bhargava	42
8.	Philosophical Musings of Swami Vivekananda Dr. Satish Chaturvedi	47
9.	Role of South Asian Association for Regional Co-Operation Ruby Meena	52
10.	Role of NGOs in Women Empowerment Anjali Sinha	57
11.	Role of Vallabhbhai Patel in the National Movement Dr. Janak Singh Meena	63
12.	Mission 73: A Stir for New Reservation Policy for ST in the TSP Areas of Rajasthan Dr. Shipra Rathore	68
13.	Globalisation and Changing Employability Status of Women Lokeshwari	73

Role of Vallabhbhai Patel in the National Movement

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

Dr. Janak Singh Meena
Assistant Professor, Department of Political Science
Jai Narain Vyas University, Jodhpur (Rajasthan)

Abstract

Sardar Vallabhbhai Patel was a great freedom fighter. He organized several movements under Mahatma Gandhi leadership. Sardar Vallabhbhai Patel made significant contribution for united India. His stern discipline, timeline strategies, Iron will and diplomacy made 562 Princely States into one Nation. Among these Patel's role in integration of Hyderabad State was one of the unique episode. Patel's role in the freedom movement was most significant, heroic and unique. He inspired the masses of India for a heroic fight. He cast a magnetic influence on them with his great qualities. Being a peasant, he championed the cause of the poor peasantry of India and realised that their lot could only be Improved by implementing the Gandhian ideology. He had no belief in any 'ism', yet, he claimed himself to be a true socialist. He was a democrat, yet he opposed democracy that had no discipline, unity and stability. He was pragmatic in his approach and not doctrinaire or dogmatic.

Keywords: *Freedom, Movement, Diplomatic, Nation, Princely*

Introduction

Vallabhbhai Patel was borne in Nadiad, Gujrat. His full name was Vallabhbhai Jhaverbhai Patel. His actual date of birth was never officially recorded but on the basis of entered in the matriculation examination record he was borne on 31 October 1875.He was the fourth son of Jhaverbhai Patel and his wife Ladba Patel. Sardar Vallabhbhai Patel the iron-man of India was born on 31st October, 1875, in a small village in Nadiad. His father Jhaverbhai Patel was a simple farmer and mother Laad Bai was a simple lady. From his childhood itself, Patel was a very hard-working individual. He used to help his father in farming and studied in a school at N. K. High school, Petlad. He passed his high-school examination in 1896. Throughout school he was a very wise and intelligent student. Inspite of poor financial conditions his father decided to send him to college but Vallabhbhai refused. Around three years he stayed at home, worked hard and prepared for the District pleaders examination, hence passing with very good percentage.

Political Philosophy of Patel

Patel, however, was no revolutionary. In the crucial debate over the objectives of the Indian National Congress during the years 1928 to 1931, Patel believed (like Gandhi and Motilal Nehru, but unlike Jawaharlal Nehru and Subhas Chandra Bose) that the goal of the Indian National Congress should be dominion status within the British Commonwealth—not independence. In contrast to Jawaharlal Nehru, who condoned violence in the struggle for independence, Patel ruled out armed revolution, not on moral but on practical grounds. Patel held that it would be abortive and would entail severe repression. Patel, like Gandhi, saw advantages in the future participation of a free India in a British Commonwealth, provided that India was admitted as an equal member. He emphasized the need to foster Indian self-reliance and

ISSN 2348-3857

self-confidence, but, unlike Gandhi, he did not regard Hindu-Muslim unity as a prerequisite for independence.

Patel disagreed with Jawaharlal Nehru on the need to bring about economic and social changes by coercion. A conservative rooted in traditional Hindu values, Patel belittled the usefulness of adapting socialist ideas to the Indian social and economic structure. He believed in free enterprise, thus gaining the trust of conservative elements, and thereby collected the funds that sustained the activities of the Indian National Congress.

Patel was the second candidate after Gandhi to the presidency of the 1929 Lahore session of the Indian National Congress. Gandhi shunned the presidency in an attempt to prevent the adoption of the resolution of independence and exerted pressure on Patel to withdraw, mainly owing to Patel's uncompromising attitude toward the Muslims; Jawaharlal Nehru was elected. During the 1930 Salt Satyagraha (prayer and fasting movement), Patel served three months' imprisonment. In March 1931 Patel presided over the Karachi session of the Indian National Congress. He was imprisoned in January 1932. Released in July 1934, he marshaled the organization of the Congress Party in the 1937 elections and was the main contender for the 1937–38 Congress presidency. Again, because of Gandhi's pressure, Patel withdrew and Jawaharlal Nehru was elected. Along with other Congress leaders, Patel was imprisoned in October 1940, released in August 1941, and imprisoned once more from August 1942 until June 1945.

During the war Patel rejected as impractical Gandhi's nonviolence in the face of the then-expected Japanese invasion of India. On the transfer of power, Patel differed with Gandhi in realizing that the partition of the subcontinent into Hindu India and Muslim Pakistan was inevitable, and he asserted that it was in India's interests to part with Pakistan.

Patel was the leading candidate for the 1945–46 presidency of the Indian National Congress, but Gandhi once again intervened for the election of Nehru. Nehru, as president of the Congress, was invited by the British viceroy to form an interim government. Thus, in the normal course of events, Patel would have been the first prime minister of India. During the first three years of independence, Patel was deputy prime minister, minister of home affairs, minister of information, and minister of states; above all, his enduring fame rests on his achievement of the peaceful integration of the princely Indian states into the Indian Union and the political unification of India.

Role in the Indian National Movement

In 1917, Sardar Vallabhbhai was elected as the Secretary of the Gujarat Sabha, the Gujarat wing of the Indian National Congress. In 1918, he led a massive 'No Tax Campaign' that urged the farmers not to pay taxes after the British insisted on tax after the floods in Kaira. The peaceful movement forced the British authorities to return the land taken away from the farmers. His effort to bring together the farmers of his area brought him the title of 'Sardar'. He actively supported the Non-cooperation Movement launched by Gandhi. Patel toured the nation with him, recruited 300,000 members and helped collect over Rs. 1.5 million.

Bardoli Satyagraha

In 1925, the taluka of Bardoli in Gujrat suffered from floods and famine, causing crop production to suffer and leaving farmers facing great financial troubles. However, the Government of the Bombay Presidency had raised the tax rate by 30% that year, and despite petitions from civic groups, refused to cancel the rise in the face of the calamities. The situation for the farmers was grave enough that they barely had enough property and crops to pay -off the tax, let feeding themselves afterwards. Patel told a delegation of farmers frankly that if they should realize fully what a revolt would imply. He would not lead them unless he had the unanimous understanding and agreement of all the villages involved.

131

ISSN 2348-3857

In 1928, an agreement was finally brokered by a Parsi member of the Bombay government. The Government agreed to restore the confiscated lands and properties, as well as cancel revenue payment not only for the year, but cancel the 30% raise until after the succeeding year. After prolonged summons, when the farmers refused to pay the extra tax, the government seized their lands in retaliation. The agitation took on for more than six months. After several rounds of negotiations by Patel, the lands were returned to farmers after a deal was struck between the government and farmers' representatives.

Salt Satyagraha

In 1930, Sardar Vallabhbhai Patel was among the leaders imprisoned for participating in the famous Salt Satyagraha movement initiated by Mahatma Gandhi. His inspiring speeches during the "Salt Movement" transformed the outlook of numerous people, who later played a major role in making the movement successful. He led the Satyagraha movement across Gujarat when Gandhi was under imprisonment, upon request from the congress members.

Sardar Patel was freed in 1931, following an agreement signed between Mahatma Gandhi and Lord Irwin, the then Viceroy of India. The treaty was popularly known as the Gandhi-Irwin Pact. The same year, Patel was elected as the President of Indian National Congress in its Karachi session where the party deliberated its future path. Congress committed itself towards defence of fundamental and human rights. It was in this session that the dream of a secular nation was conceived.

During the legislative elections of 1934, Sardar Vallabhbhai Patel campaigned for the Indian National Congress. Though he did not contest, Sardar Patel helped his fellow party mates during the election.

In the 1942 Quit India Movement, Patel continued his unwavering support to Gandhi when several contemporary leaders criticized the latter's decision. He continued travelling throughout the country propagating the agenda of the movement in a series of heart-felt speeches. He was arrested again in 1942 and was imprisoned in the Ahmednagar fort till 1945 along with other Congress leaders.

Sardar Patel's journey often saw a number of confrontations with other important leaders of the congress. He voiced his annoyance at Jawaharlal Nehru openly when the latter adopted socialism in 1936. Patel was also wary of Netaji Subhash Chandra Bose and considered him to be "keen on more power within the party".

Sardar Patel & the Partition of India

Patel's tactful but firm dealings with the revolt of Travancore and Hyderabad states and his brush with the rulers of Jodhpur, Kathiawar, Bhopal and Junagadh finally and swiftly demolishing the princely order are dealt with in detail.

Immediately on receiving Prime Minister Nehru's letter of December 23, 1947 informing Patel of his decision to take Kashmir from Patel's charge to place it under the charge of Gopalaswamy Ayyangar, an outraged Patel forthwith penned his letter of resignation as a member of the government. But, on Gandhiji's intervention, the letter remained undelivered.

According to H. V. Kamath's memoirs quoted by the author, Patel once told Kamath that "if Jawaharlal Nehru and Gopalaswamy had not made Kashmir their close preserve, separating Kashmir from my portfolio of Home and States, I would have tackled the problem as purposefully as I had already done in Hyderabad."

The author's elaborate argument that the Partition of India was a churchillian plan is far from convincing. The fact remains that both Nehru and Patel finally agreed to the Partition and prevailed upon an unwilling Gandhiji to acquiesce in the fait accompli of their decision as the only alternative to civil war, a gory rehearsal of which was staged by the Muslim League in the Calcutta killings of August 1946 repeated in Noakhali and Tripura.

On the whole, the book is a refreshing re-exposure of a sturdy stalwart of the Indian freedom movement that Patel was who could have been the first prime minister but for Mahatma Gandhiji's intervention.

ISSN 2348-3857

The separatist movement lead by Muslim League leader Mohammed Ali Jinnah led to a series of violent Hindu-Muslim riots across the country just before the independence. In Sardar Patel's opinion, the open communal conflicts incited by the riots had the potential to establish a weak Government at the centre post-independence which will be disastrous for consolidating a democratic nation. Patel went on to work on a solution with V.P. Menon, a civil servant during December 1946 and accepted his suggestion of creating a separate dominion based on religious inclination of states. He represented India in the Partition Council.

Contributions to Post-independence India

After India achieved independence, Patel became the first Home Minister and also the Deputy Prime Minister. Patel played a very crucial role in post-independence India by successfully integrating around 562 princely states under the Indian Dominion. The British Government had presented these rulers with two alternatives - they could join India or Pakistan; or they could stay independent. This clause magnified the difficulty of process to mammoth proportions. Congress entrusted this intimidating task to Sardar Patel who started lobbying for integration on August 6, 1947. He was successful in integrating all of them barring Jammu and Kashmir, Junagarh and Hyderabad. He eventually dealt with the situation with his sharp political acumen and secured their accession. The India that we see today was a result of the efforts put in by Sardar Vallabhbhai Patel.

Patel was a leading member of the Constituent Assembly of India and Dr. B.R. Ambedkar was appointed on his recommendation. He was the key force in establishing the Indian Administrative Service and the Indian Police Service. He took personal interest in initiating a restoration endeavour of the Somnath Temple in Saurashtra, Gujarat. Patel dealt ruthlessly with the Pakistan's efforts to invade Kashmir in September 1947. He oversaw immediate expansion of the army and marked improvement of other infrastructural aspects. He often disagreed with Nehru's policies, especially about his dealings with Pakistan regarding the refugee issues. He organised multiple refugee camps in Punjab and Delhi, and later in West Bengal.

Contribution of Sardar Patel in Indian freedom struggle and modern India

1. In 1918, Vallabhbhai took the responsibility of leading the farmers of Gujarat. He started the Kheda satyagraha that demanded the suspension of the revenue collection from farmers as there was a drought.

2. In 1920, the Congress started the non-co-operation struggle and Vallabhbhai gave up his practice. He setup the Gujarat Vidyapeeth where children could study instead of attending Government schools.

3. In 1928 he successfully organized the land-owners of Bardoli against British tax increases. It was after this that Vallabhbhai was given the title of Sardar (Leader).

4. In 1931 he served as President of the Indian National Congress in its Karachi session which changed the nature of movement from a political struggle and added to it new socio-economic dimensions. As part of congress, he was part of the No changers faction and emphasised on the crucial role of constructive work in village regeneration and carrying the message of nationalism to the masses.

5. He was also the chairman of the congress parliamentary sub-committee which had complete control over congress ministries during 28 months of their rule under 1935 act.

6. He played a crucial role in the torturous negotiations with the British for freedom and Partition of the country.

7. Patel was one of the first Congress leaders to accept the partition of India as a solution to the rising Muslim separatist movement led by Muhammad Ali Jinnah. He had been outraged by Jinnah's Direct Action campaign, which had provoked communal violence across India, and by the viceroy's vetoes of his home department's plans to stop the violence on the grounds of constitutionality.

ISSN 2348-3857

8. Constituent Assembly-Patel was part of constituent assembly to frame constitution of India. He was instrumental in collecting eminent people across country and also persuade Ambedkar to become member of drafting committee. Patel was the chairman of the committees responsible for minorities, tribal and excluded areas, fundamental rights, and provincial constitutions.

9. In 1947 when India got freedom, Sardar Patel became the Deputy Prime Minister. He was in charge of Home Affairs, Information and Broadcasting and the Ministry of States. He was given the task of integrating the 562 Princely States into the union. He skilfully achieved this and took strong steps like sending the army to Junagadh and Hyderabad to force them to align with free India. It is because of these strong steps he is called Iron Man of India.

10. It was Sardar Patel's vision that the Civil Service should strengthen cohesion and national unity. He wanted a strong and vibrant federal administrative system in which the All India Services would play an important role.

Conclusion

Gandhi had profound effect on Patel's politics and thoughts. He pledged unwavering support to the Mahatma and stood by his principles all through his life. While leaders including Jawaharlal Nehru, Chakravarthi Rajagopalachari and Maulana Azad criticized Mahatma Gandhi's idea that the Civil Disobedience movement would compel the British to leave the nation, Patel extended his support to Gandhi. Despite the unwillingness of the Congress High Command, Mahatma Gandhi and Sardar Vallabhbhai Patel strongly forced the All India Congress Committee to ratify the Civil Disobedience movement and launch it without delaying further. Upon Gandhi's request he gave up his candidacy for the post of the Prime Minister of India. He suffered a major heart attack after Gandhi's death. Although he recovered, he attributed it to having lamented silently for the loss of his mentor.

Sardar Vallabhbhai Patel's health started declining in 1950. He realized that he was not going to live much longer. On 2nd November 1950, his health deteriorated further and he was confined to bed. After suffering a massive heart attack, on 15 December 1950, the great soul left the world. He was posthumously conferred the Bharat Ratna, India's highest Civilian honour, in 1991. His birthday, October 31, was declared Rashtriya Ekta Divas in 2014.

References

1. Singh, M.K. (2014). Sardar Vallabhbhai Patel An Iron Man of India, Vol.2, New Delhi: Anmol Publications, pp. 142.
2. Reddy, P.L., Sanjeev & Mishra, S.N. (2004). *Sardar Vallabhbhai Patel -The National Builder.* New Delhi: Indian Institute of Public Administration, pp. 213.
3. Menon, V.P. (2016). *Integration of the Indian States.* New Delhi: Orient Black Swan, pp. 57.
4. Gandhi, R. (2013). *Patel a Life.* Ahmedabad: Navajivan Publishing House, pp. 216.
5. Meena, J.S. (2020). *Sardar Patel – Vyaktitva, Vichar evam Rashtra Nirman*, New Delhi: Vani Prakashan, pp. 67.
6. Malhotra, N.C. (2012). *Sardar Vallabhabhai Patel : Vyakti evam Vichar.* Delhi: Atma Ram and Sans, pp. 62.
7. Kumar, R. (1991). *Sardar Vallabhabhai Patel Ke Samajik v Rajnitik Vichar.* New Delhi: Mittal Publications, pp. 112.

ISSN No: 2249-6661 (Print)

SAMBODHI

A Quarterly Peer Reviewed, Refereed Research Journal

Volume: 43, Number: 4 (October-December) Year: 2020

UGC Care Listed Journal

L.D. INSTITUTE OF INDOLOGY

मन्नू भंडारी की रचनाओं में नारी प्रधान समस्याओं का साहित्यिक विश्लेषण — 63
सुबोध कुमार

POPULATION RESOURCE POTENTIAL FOR SUSTAINABLE DEVELOPMENT IN KHAGARIA DISTRICT — 66
Dr. Kalindi Prabha

डॉ. राममनोहर लोहिया की लोकतांत्रिक अवधारणा — 69
डॉ. जनक सिंह मीना

CASTE AND DISCRIMINATION IN INDIAN HIGHER EDUCATION — 76
Pallavi Singh

MICRO SMALL AND MEDIUM ENTERPRISES (MSMES) AMID COVID-19: THE PROBLEM IDENTIFICATION AND GOVERNMENT ASSISTANCE — 79
Sonam Agrawal, Dr. S.K. Agarwal

GANDHI'S IDEALS ON DECENTRALIZATION: PAST, PRESENT AND FUTURE OF PANCHAYATI RAJ INSTITUTION IN INDIA — 97
Sikandar Kumar

हिन्दी काव्य-साहित्य और युद्ध-चित्रण — 100
डॉ. मृदुस्मिता देवी

REVVING UP KARNATAKA'S COCONUT PRODUCTION INDUSTRY — 108
Nagendra N, Dr.Pralhad Rathod

Sambodhi
(UGC Care Journal)
ISSN: 2249-6661
Vol-43, No.-4, (I) October-December (2020)

डॉ. राममनोहर लोहिया की लोकतांत्रिक अवधारणा

डॉ. जनक सिंह मीना
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

सारांश

राम मनोहर लोहिया एक स्वतंत्रता सेनानी, प्रखर समाजवादी और सम्मानित राजनीतिज्ञ थे। राम मनोहर ने हमेशा सत्य का अनुकरण किया और आजादी की लड़ाई में अद्भुद काम किया। भारत की राजनीति में स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान और उसके बाद ऐसे कई नेता आये, जिन्होंने अपने दम पर राजनीति का रूख बदल दिया, उन्हीं नेताओं में एक थे राममनोहर लोहिया। वे अपनी प्रखर देशभक्ति और तेजस्वी समाजवादी विचारों के लिए जाने गये और इन्हीं गुणों के कारण अपने समर्थकों के साथ-साथ उन्होंने अपने विरोधियों से भी बहुत सम्मान हासिल किया। लोहिया के वैश्विक समाजवाद की विचारधारा, लोहिया के स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान एवं चौखंमा राज्य की अवधारणा ने लोगों में एक समझ विकसित करने का प्रयास किया गया। इस अध्ययन के माध्यम से लोहिया के चिंतन एवं लोकतांत्रिक विचारों को समझने के साथ उनके योगदान को दृष्टिपटल पर लाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : समाजवाद, समताभाव, वैष्विक समाजवाद, चौखंभा अवधार

प्रस्तावना

डॉ. राम मनोहर लोहिया का जन्म २३ मार्च, १६१० को उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जनपद में (वर्तमान अम्बेडकर नगर जनपद) अकबरपुर नामक स्थान पर हुआ। इनके पिता श्री हीरालाल जो कि अध्यापक थे और सच्चे राष्ट्रभक्त थे। इनकी माता का नाम श्रीमती चन्दादेवी था, जो लोहिया के ढ़ाई वर्ष की आयु में ही स्वर्ग सिधार गयी थी। इनके पिताजी महात्मा गाँधी के अनुयायी थे और जव भी गाँधीजी से मिलने जाते तो राम मनोहर को भी अपने साथ ले जाया करते थे, जिसका प्रभाव इनके व्यक्तित्व पर पड़ा। वर्ष १६२१ में फैजाबाद किसान आन्दोलन के दौरान जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात हुई और १६२४ में प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस के गया अधिवेशन में भाग लिया।

वर्ष १६२१ में वे पंडित जवाहर लाल नेहरू से पहली बार मिले और कुछ वर्षों तक उनकी देखरेख में कार्य करते रहे, लेकिन बाद में उन दोनों के बीच विभिन्न मुद्दों और राजनीतिक सिद्धान्तों को लेकर टकराव हो गया, १८ साल की उम्र में वर्ष १६२८ में युवा लोहिया ने ब्रिटिश सरकार द्वारा गठित 'साइमन कमीशन' का विरोध करने के लिए प्रदर्शन का आयोजन किया, उन्होंने अपनी मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करने के बाद इंटरमीडिएट में दाखिला बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में कराया, उसके बाद उन्होंने वर्ष १६२६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी की और पीएच.डी. करने के लिए बर्लिन विश्वविद्यालय, जर्मनी चले गये, जहाँ से उन्होंने वर्ष १६३२ में इसे पूरा किया। वहाँ उन्होंने शीघ्र ही जर्मन भाषा सीख ली और उनको उत्कृष्ठ शैक्षणिक प्रदर्शन के लिए वित्तीय सहायता भी मिली।

राम मनोहर लोहिया एक स्वतंत्रता सेनानी, प्रखर समाजवादी और सम्मानित राजनीतिज्ञ थे। राम मनोहर ने हमेशा सत्य का अनुकरण किया और आजादी की लड़ाई में अद्भुद काम किया। भारत की राजनीति में स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान और उसके बाद ऐसे कई नेता आये, जिन्होंने अपने दम पर राजनीति का रूख बदल दिया, उन्हीं नेताओं में एक थे राममनोहर लोहिया। वे अपनी प्रखर देशभक्ति और तेजस्वी समाजवादी विचारों के लिए जाने गये और इन्हीं गुणों के कारण अपने समर्थकों के साथ-साथ उन्होंने अपने विरोधियों से भी बहुत सम्मान हासिल किया।

लोहिया बचपन से ही निर्भीक और उन्मुक्त विचारों से परिपूर्ण एवं मन में 'सत्य-सादगी' का भाव रखते थे। परिवार का वातावरण जाति-पाति के भेदभाव से मुक्त था। घर में सभी लोगों का आना-जाना रहता था। इन्हीं सब कारणों से इनमें प्रारम्भ से ही सभी के प्रति समताभाव, गरीबों, दलितों से स्नेह भाव, परम्पराओं व रीति-रिवाजों से घृणा की भावना थी। इनमें अन्याय के प्रति सतर्कता तथा विरोध की इच्छा इनमें प्रारम्भ से ही थी। शोषण के कुचक्र की भावना ने इनके अन्तःमन को झकझोर कर रख दिया।

अध्ययन के उद्देश्य

डॉ. राम मनोहर लोहिया का जीवन परिचय, उनकी रचनाओं का संक्षिप्त सार दिया गया है, जिससे उनका परिचय करवाया जा सके। यहाँ समाजवाद की अवधारणा, लोहिया का समाजवाद, समाजवादी विचारधारा की आवश्यकता, जाति, वर्ण, वर्ग-विहीन समाज की स्थापना को समझाने का प्रयास किया गया है। इससे ऐसी समझ विकसित करने के प्रयास किये गये हैं, जिससे देश में जाति प्रथा की जंजीरों को तोड़ते हुए राष्ट्र निर्माण की भावना विकसित की जा सके। साथ ही लोहिया के वैश्विक समाजवाद की विचारधारा, लोहिया के स्वतंत्रता आन्दोलन

Copyright © 2020Authors

ISSN: 2249-6661
Sambodhi
(UGC Care Journal)
Vol-43, No.-4, (I) October-December (2020)

में योगदान एवं चौखंभा राज्य की अवधारणा की समझ विकसित करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से लोहिया के चिंतन एवं लोकतांत्रिक विचारों को समझने के साथ उनके योगदान को जानने का प्रयास किया गया है।

डॉ. लोहिया की रचनाएँ

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने हिन्दी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में पुस्तक रचनाएँ, लेख, शोधपत्र आदि का लेखन कार्य किया, जिनमें प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं :-

The Caste System (1964)

1. Wheel of History (1936)
2. Guilty Man of India's Partition (1960)
3. Marx, Gandhi and Socialism (1963)
4. lektoknh vkUnksyu dk bfrgkl ¼1969½
5. bfrgkl pØ ¼1969½
6. Hkkjr vkSj lektokn ¼1968½
7. lektokn vkSj vFkZuhfr ¼1968½
8. lektokn dh jktuhfr ¼1968½
9. lektoknh fparu ¼1962½
10. lektokn ds vkfFkZd vk/kkj ¼1952½

समाजवाद की अवधारणा

समाजवाद एक आर्थिक-सामाजिक दर्शन है। समाजवादी व्यवस्था में धन सम्पत्ति का स्वामित्व और वितरण समाज के नियन्त्रणाधीन होते हैं। आर्थिक, सामाजिक और वैचारिक प्रत्यय के तौर पर समाजवाद निजी सम्पत्ति पर आधारित अधिकारों का विरोध करता है। समाजवादी अवधारणा के अनुसार सम्पदा का उत्पादन और वितरण समाज या राज्य के हाथों में होना चाहिए। समाजवाद अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्द 'सोशलिज्म' का ही हिन्दी अनुवाद है। इस शब्द का प्रयोग १९वीं सदी से पहले व्यक्तिवाद के विरोध में तथा उन विचारों के समर्थन में किया जाता था, जिनका लक्ष्य समाज के आर्थिक और नैतिक आधार को बदलना था और जो जीवन में व्यक्तिगत नियंत्रण के स्थान पर सामाजिक नियंत्रण चाहते थे।

समाजवाद को सरल शब्दों में परिभाषित करते हैं - ऐसी व्यवस्था जिसमें समाज के संसाधनों पर जन-जन का साझा हो। सभी लोग अपनी क्षमतानुसार कार्य करें, अर्जित सम्पत्ति का मिल बांटकर अपने और सर्वहित में उपयोग करें तथा उनका प्रबंधन समाज द्वारा लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित सरकार द्वारा किया जाता हो। दूसरे शब्दों में 'समाजवाद' वह कल्याणकारी व्यवस्था है, जिसमें नागरिकों के बीच निजता का लोप होकर, कल्याण का समविभाजन होने लगता है। समाजवाद कहता है कि लोग अपने-अपने दायित्वों को समझें, उनका पालन करें। उनके बीच, जाति, लिंग, वर्ण, भाषा, क्षेत्र, जन्म आदि के आधार पर किसी प्रकार का विभाजन न हो। ऊपर से नीचे तक सभी कुछ समान हो। समाज की सम्पदा में उसके सभी वर्गों, इकाइयों का साझा हो। समाजवाद की भावना चाहे लोगों के मन में आदिकाल से रही हो, इसके उद्धरण वेदों में देखे जा सकते हैं। उपनिषदों और महाकाव्यों में इसे देखा जा सकता है, साथ ही लोक संस्कृति और लोक साहित्य में भी इसके अनेकों उदाहरण मिलते हैं। भारत में समाजवादी चेतना ने रूस के रास्ते से दस्तक दी थी।

डॉ. लोहिया का समाजवाद

डॉ. लोहिया ने विदेश प्रवास के दौरान मार्क्स का गहन अध्ययन किया था। विश्व के समाजवादी नेताओं के सम्पर्क में आने के कारण समाजवादी परिस्थितियों का गहन निरीक्षण किया। उस समय विश्व में अनेक समाजवादी विचारधाराएं प्रचलित थी। हालांकि प्रत्येक का लक्ष्य सामान्य जनता की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था, लक्ष्य एक था परन्तु साधनों में भिन्नता थी। डॉ. लोहिया ने भारतीय परिवेश के अन्तर्गत अपने समाजवाद को विकसित किया।

डॉ. लोहिया ने समाजवाद का अर्थ एकता, समानता एवं सम्पन्नता का विचार है। उनके अनुसार 'समता-समानता के माध्यम से सम्पन्नता, सम्पन्नता के समतामूलक बंटवारों से और अधिक समानता तथा फिर और अधिक समानता तथा फिर और अधिक सम्पन्नता समाजवाद की कार्यप्रणाली है।' समाजवाद में इतना होता है कि जो उत्पादन के साधन हैं जैसे बड़े-बड़े कारखाने, जमीन जहाँ खेती होती है, उन पर शासन या समाज का अधिकार होता है और उससे जो पैदावार होती है, उसका वितरण बहुत कुछ न्यायपूर्ण ढंग से होता है। डॉ. लोहिया के अनुसार समाजवादी का मतलब होता है, जो निजी सम्पत्ति को बढ़ाने के बजाय सामूहिक मूल्य की सम्पत्ति को बढ़ाने की बातें सोचे और करें। उनके अनुसार अधिकाधिक सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो, लेकिन साथ में उसमें वृद्धि हो। इसी से आर्थिक समता व वितरण की

Copyright © 2020Authors

Sambodhi
(UGC Care Journal)
ISSN: 2249-6661
Vol-43, No.-4, (I) October-December (2020)

समानता के आधार पर सभी को लगभग समान भाग प्राप्त होगा। समाजवाद की इस परिभाषा में लोहिया के समाजवाद में चार लक्ष्य निर्धारित हुए हैं - (१) प्रशासन का जनतंत्रीयकरण (२) छोटी मशीन योजना (३) समाजीकृत सम्पत्ति तथा (४) अधिकतम सम्भव समानता।

डॉ. लोहिया मानते थे कि गैर बराबरी को दूर किये बिना आर्थिक विकास बेमतलब की बातें हैं। उनका समाजवाद सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह देश के औद्योगिक ढ़ांचे को भी निर्धारित करता है। लोहिया के समाजवाद में देश की आवश्यकतानुसार छोटी मशीन योजना वाली उद्योग प्रणाली तथा विकेन्द्रीकरण और जनतंत्रवाली सरकार होती है। डॉ. लोहिया का समाजवाद नवोदित गरीब तथा अभावग्रस्त देशों में लागू होने वाला विचार है। लोहिया की समाजवादी व्यवस्था में समाजीकृत सम्पत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार समाजवाद में सामाजिक व्यवस्था तथा सम्पत्ति के ऊपर समान अधिकार रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करने की घोषणा की गई है, क्योंकि बिना आर्थिक अवसरों की समानता के स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होता और बिना आर्थिक स्वतंत्रता के समानता के अवसरों का कोई मूल्य नहीं होता।

जाति, वर्ण, वर्ग-विहीन समाज की स्थापना

डॉ. लोहिया मात्र वर्ग का नाम लेकर ही चुप नहीं रहते, वे इसके साथ कुछ और चित्र प्रस्तुत करते हैं। वे वर्ग के साथ जाति को छोड़कर इस परीक्षण के माध्यम से वर्गों के गठन को देखते हैं और सम्पूर्ण समाजवादी आन्दोलन को भारतीय समाज के गठन के अनिवार्य तथ्यों का भी परीक्षण करते हैं। डॉ. लोहिया का कहना था - 'आज तक जितने भी सुधारवादी आन्दोलन हुए, सभी हिन्दू व्यवस्था द्वारा उदरस्थ कर लिये गये और जातिवाद का भयानक दलदल अभी भी बना हुआ है। यह दलदल इतना गहरा है कि बड़ा-से-बड़ा पत्थर इसके गर्भ में कहाँ चला जाता है, कुछ भी पता नहीं चलता। जब तक यह दलदल सुखा दिया नहीं जाता, तब तक भारत में जातिवाद का नाश नहीं हो सकता।'

डॉ. लोहिया के रचनात्मक कार्यक्रमों का मूल आधार गरीबी हटाना था। उन्होंने कहा था - जिस दुनिया की रचना हम करना चाहते हैं, उसमें से गरीबी को निकाल फेंकने का संकल्प है। गरीबी के मद्देनजर उन्होंने सत्ता के विकेन्द्रीकरण और लघु उद्योगों का पक्ष लिया। लोहिया पूंजीपतियों के विनाश के पक्षधर थे, पर पूंजीपति के विनाश के साथ ही वह प्रत्येक व्यक्ति, जीवन और सुरक्षा को भी उससे जोड़ते थे। इसी प्रकार जमींदार उन्मूलन के साथ-साथ भूमि वितरण की चर्चा करके प्रत्येक व्यक्ति के पास ६ एकड़ की जमीन की शर्त को जरूरी मानते थे।

डॉ. लोहिया भारतीय समाज के विकास में सबसे बड़ा बाधक जातिवाद को मानते थे। जातिवाद के प्रति उनकी दृष्टि बड़ी विश्लेषणात्मक है और उन्हें लगता है कि वर्ग-संघर्ष की समस्या भारतीय समाज में उतनी विषम नहीं है। मूल समस्या तो जाति की है और जाति उन्मूलन की बात इतनी आसान नहीं है। डॉ. लोहिया भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जड़ जाति-चेतना को वर्ग में बदलना चाहते हैं। यदि जाति व्यवस्था में किसी प्रकार की आर्थिक और राजनीतिक आकांक्षा भर दी जाये और वह उसके तहत गतिशील हो जाये, तो सारी की सारी जातियां वर्ग में बदल जायेंगी। डॉ. लोहिया ने इतिहास चक्र में मानव-नियति और प्रगति का विश्लेषण करते हुए लिखा है, "जब किसी भी समाज के आन्तरिक संघर्ष असहनीय और अवसर के अभाव में रहते-रहते जड़ हो जाते हैं, तब जाति व्यवस्था की ओर वह समाज अग्रसर होता है। इसलिए किसी भी जातिगत उपलब्धियों को गौरवशाली नहीं मानना चाहिये और न ही उन आधारों पर जातियों के विनाश के कार्यक्रम को ढ़ीला करना चाहिए।"

वैचारिक स्तर पर डॉ. लोहिया की यह निश्चित धारणा थी कि जाति-प्रथा को समाप्त करने के लिए गरीबी हटाना जरूरी है और गरीबी हटाने के लिए जाति-प्रथा को समाप्त करना जरूरी है, क्योंकि जाति-प्रथा और गरीबी दोनों एक-दूसरे को पनपाते और बढ़ाते हैं। जाति-प्रथा है तो समाज का बहुत बड़ा हिस्सा गरीब रहेगा और यदि गरीबी रहती है तो किसी-न-किसी रूप में जाति-व्यवस्था ही रहेगी। लोहिया का विश्वास था कि जाति-प्रथा परिवर्तन के विरूद्ध तो है साथ ही साथ यह जड़ता की भी पोषक है। उनके अनुसार जाति-प्रथा के रहने से चार बड़े दोष समाज में पनपते हैं, वे हैं :-

I. जाति-प्रथा में आपस में सामाजिक आत्मीयता समाप्त हो जाती है।
II. 'समाज की इकाइयां' ही विभक्त हो जाती हैं।
III. सामाजिक 'आदान-प्रदान' समाप्त हो जाता है।
IV. उक्त सभी का सामूहिक प्रभाव यह होता है कि राष्ट्र की गति अवरूद्ध हो जाती है।

लोहिया का वैश्विक समाजवाद

समाजवाद के प्रणेता डॉ. राम मनोहर लोहिया पहले ऐसे समाजवादी थे, जो राजनीति के प्रदूषण को समाप्त करने के साथ-साथ एक ऐसा राजनीतिक वातावरण उपस्थित करना चाहते थे, जिसमें सभी का समान विकास हो सके, सभी के लिए रोजी, रोटी का प्रबंध हो, जो दबे

Copyright @ 2020Authors

ISSN: 2249-6661
Sambodhi
(UGC Care Journal) Vol-43, No.-4, (I) October-December (2020)

कुचले लोग हैं, उन्हें उनका हक मिल सके। इन सभी भावनाओं के आधार पर वैश्विक कल्याण की भावना सन्निहित रही। प्रो. योगेन्द्र यादव ने उन भावनाओं को बिन्दुवार निम्नानुसार बताया है।

स्त्री-पुरुष समानता :- डॉ. राम मनोहर लोहिया ने यह अनुभव किया कि इस विश्व में स्त्री और पुरुष के बीच बहुत अधिक असमानता है, इसको दूर किये बिना एक अच्छे विश्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। स्त्री और पुरुष पारिवारिक जीवन के ऐसे दो पहिये होते है, जिसकी असमानता से प्रगति प्रभावित हो सकती है, अतः विश्व को यदि तीव्र गति से प्रगति के पथ पर चलना है, तो स्त्री और पुरुष के बीच समानता होना अति आवश्यक है।

रंग भेद दूर करना :- डॉ. राम मनोहर लोहिया ने यह अनुभव किया कि यह विश्व रंगभेद के आधार पर दो वर्गों में बंटा हुआ है। गोरे लोग इस देश के काले लोगों को हीन मानते हैं, उनके ऊपर तरह-तरह के जुल्म करते हैं, उनकी बुनियादी जरूरत पूरी न हो सके, इसके लिए नाना प्रकार के जतन करते हैं। अनेक ऐसे कानूनों का निर्माण करते हैं, जो रंगभेद के सिद्धान्त का पोषण करते हैं, जब तक यह भावना समाप्त नहीं होगी, तब तक दुनिया में व्याप्त रंगभेद की समस्या समाप्त नहीं होगी। जब तक यह समस्या समाप्त नहीं होगी, तब तक विश्व को एक सूत्र में नहीं बांधा जा सकता है, इसे समाप्त करने के सूत्र केवल समाजवाद में हैं।

सामाजिक असमानता को दूर करना :- डॉ. राम मनोहर लोहिया विश्व समाज में व्याप्त असमानता को देख कर बड़े दुखी थे। समाज का एक धड़ा जिसके पास दुनिया की तमाम चल-अचल सम्पत्ति थी और दूसरा धड़ा जिसको दो जून का भोजन भी नहीं मिल पा रहा था, इसे देखकर लोहिया की आत्मा रो पड़ती थी। दूसरा बिना असमानता को दूर किये एक स्वस्थ समाज की कल्पना नहीं की जा सकती थी, न ही एक ऐसे विश्व की कल्पना की जा सकती है, जिसमें सभी के लिए समान अवसर हो।

जातिगत असमानता को दूर करना :- डॉ. राम मनोहर लोहिया ने जब देखा कि भारत के लोग अनेक जातियों में बंटे हैं, उनके बीच में एक ऐसी कटुता ने जन्म ले लिया है, जो दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। हर एक जाति दूसरी जाति की रोटी छीनने पर उतारू है, इन सभी विषमताओं और विद्वेष के पीछे जातीय कटुता जिम्मेदार है। जब तक इस जातीय कटुता को समाज से समाप्त नहीं किया जायेगा, तब तक समाजवाद की कल्पना ही नहीं की जा सकती, इसलिए डॉ. लोहिया इस जातीय असमानता को दूर करना अपनी प्राथमिकता बनाना चाहते थे।

आर्थिक असमानता :- आर्थिक आधार पर जब हम इस भारत या उत्तर प्रदेश को देखते हैं, तो अमीर और गरीब के बीच में एक ऐसी खाई दिखाई पड़ती है, जिसको लांघने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसमें एक वर्ग के पास देश की ६० प्रतिशत से अधिक की सम्पत्ति पर अधिकार या कब्जा है, जबकि ६० प्रतिशत ऐसे लोग हैं, जिन्हें हर दिन अपने भोजन में से ही कटौती करने को विवश होना पड़ता है।

व्यक्तिगत गोपनीयता :- डॉ. राम मनोहर लोहिया चाहते थे कि देश और विश्व के सभी राजनेताओं के जीवन में इतनी पारदर्शिता हो, जिससे उसके बारे में लोग छोटी से छोटी बातें भी जानते हों, ऐसा उनका अधिकार भी है। जिस व्यक्ति को इस देश पर शासन करने का अधिकार देते हैं, उसकी गोपनीयता का सवाल ही कहाँ उठता है, किन्तु बहुत निजी मसलों में जनता को भी झांकने की सलाह नहीं देते हैं। हर व्यक्ति की अपनी निजी जिन्दगी होती है, जिसमें किसी को भी दखलअंदाजी नहीं करनी चाहिये।

लोकतान्त्रिक अधिकार :- इस विश्व के हर व्यक्ति को कुछ लोकतान्त्रिक अधिकार मिले हुए हैं, यदि नहीं मिले हैं, तो उन्हें वह लोकतान्त्रिक अधिकार मिलने चाहिए। जनता को अपने लोकतान्त्रिक अधिकारों का उपयोग अपने विकास के लिए करना चाहिए।

नागरिक अवज्ञा का अवलम्बन :- यदि कोई चुनी हुई सरकार मनमानी करती है, अपने उसूलों से भटकती है, ऐसे में सभी नागरिकों को यह अधिकार मिला हुआ है कि वे विनम्रतापूर्वक उस कानून का या उस निर्णय का विरोध करना चाहिये और इस आन्दोलन के माध्यम से उन नागरिक अधिकारों का हनन करने वाली सरकार को सत्ता से बाहर कर देना चाहिये।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन मेंलोहिया का योगदान

स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने की उनकी बचपन से ही प्रबल इच्छा थी, जो बड़े होने पर भी खत्म नहीं हुई। जब वे यूरोप में थे तो उन्होंने वहाँ एक क्लब बनाया जिसका नाम 'असोसिएशन ऑफ यूरोपियन इंडियंस' रखा, जिसका उद्देश्य यूरोपीय भारतीयों के अन्दर भारतीय राष्ट्रवाद के प्रति जागरूकता पैदा करना था, उन्होने जिनेवा में 'लीग ऑफ नेशन्स' की सभा में भी भाग लिया। यद्यपि भारत का प्रतिनिधित्व ब्रिटिश राज्य के एक सहयोगी के रूप में बीकानेर के महाराजा द्वारा किया गया था, परन्तु लोहिया इसके अपवाद थे, उन्होंने दर्शक गैलेरी से विरोध प्रदर्शन शुरू किया और बाद में अपने विरोध के कारणों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने समाचार-पत्र और पत्रिकाओं के संपादकों को कई पत्र लिखे, इस पूरी घटना ने रातों-रात राम मनोहर लोहिया को भारत में एक सुपरस्टार बना दिया। भारत वापस आने पर वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये और वर्ष १६३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की आधारशिला रखी, वर्ष १६३६ में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी का पहला सचिव नियुक्त किया।

Copyright © 2020Authors

Sambodhi
(UGC Care Journal)
ISSN: 2249-6661
Vol-43, No.-4, (I) October-December (2020)

२४ मई, १६३६ को लोहिया को उत्तेजक बयान देने और देशवासियों से सरकारी संस्थानों का बहिष्कार करने के लिए पहली बार गिरफ्तार किया गया, पर युवाओं के विद्रोह के डर से उन्हें अगले ही दिन रिहा कर दिया गया, हालांकि जून १६४० में उन्हें "सत्याग्रह नाउ" नामक लेख लिखने के आरोप में पुनः गिरफ्तार किया गया और दो वर्षों के लिए कारावास भेज दिया गया। बाद में उन्हें दिसम्बर १६४१ में आजाद कर दिया गया, भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान वर्ष १६४२ में महात्मा गांधी, नेहरू, मौलाना आजाद और वल्लभभाई पटेल जैसे कई शीर्ष नेताओं के साथ उन्हें भी कैद कर लिया गया था।

इसके बाद भी वे दो बार जेल गये, एक बार उन्हें मुम्बई में गिरफ्तार कर लाहौर जेल भेजा गया था और दूसरी बार पुर्तगाली सरकार के खिलाफ भाषण और सभा करने के आरोप में गोवा, जब भारत स्वतंत्र होने के करीब था, तो उन्होंने दृढ़ता से अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से देश के विभाजन का विरोध किया था। वे देश का विभाजन हिंसा से करने के खिलाफ थे। आजादी के दिन जब सभी नेता १५ अगस्त, १६४७ को दिल्ली में इकठ्ठे हुए थे, उस समय वे भारत के अवांछित विभाजन के प्रभाव के शोक की वजह से अपने गुरू (महात्मा गांधी) के साथ दिल्ली से बाहर थे।

१६३०-४० के दशक में समाजवादी विचारधारा के समर्थक लोग कांग्रेस के ही अंग 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' के सदस्य थे और डॉ. लोहिया भी इसी दल में थे। उन्हें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की पत्रिका का सम्पादक भी नियुक्त किया गया था। विदेशी मामलों में डॉ. लोहिया की रूचि थी और इस क्षेत्र के वे जाने-माने विशेषज्ञ बन गये थे, अतः पण्डित नेहरू ने डॉ. लोहिया को परराष्ट्र-नीति का प्रवक्ता बनाया था। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारत छोड़ो आन्दोलन में उनकी महत्ती भूमिका रही थी। जब गाँधीजी को सरकार ने बन्दी बना लिया, आन्दोलन का कार्य डॉ. लोहिया ने सम्भाला। वे केन्द्रीय संचालक मण्ड़ल के नीति-निर्धारकों में प्रमुख थे, अतः उन्हें भी कैद में डाल दिया गया। अप्रैल १६४७ में वे जेल से रिहा किये गये। इस काल तक डॉ. लोहिया कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता के नाते कार्य करते रहे थे, किन्तु भारत का विभाजन एक ऐसी घटना थी जिससे उनकी आस्था कांग्रेस की नीतियों एवं उसके नेताओं से टूट गई अतः देश में गैर-कांग्रेसवाद का नारा देकर कांग्रेस को सत्ता से अपदस्थ करना उनकी प्रमुख रणनीति बन गई। उनकी जैम ळनपसजल डमद व िंदकपं चंतजपजपवद पुस्तक उसी विचार का अंग था, जिसमें उन्होंने भारत के विभाजन का सारा दोष कांग्रेस के नेताओं पर डाला है।

स्वतंत्रता के बाद की गतिविधियाँ

कांग्रेस से अलग होकर डॉ. लोहिया भारतीय राजनीति में समाजवादी आन्दोलन की ओर बढ़े। कांग्रेस से दूर रहने की दृष्टि से उन्होंने समाजवादियों को कांग्रेस तथा साम्यवादी दलों से समान दूरी रखने के लिये म्नप.क्पेजंदबम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था तथा वैतूल में उन्होंने प्रजा समाजवादी पार्टी के सदस्यों की कांग्रेस के साथ सहयोग करने की नीति की खुली आलोचना की (१६५३)। दो वर्ष पश्चात १६५५ में उन्होंने 'भारतीय समाजवादी दल' नामक स्वतंत्र दल खड़ा किया। समाजवादी दलों में भी मेल और टूट की घटनाएँ सामान्य बात थी जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त समाजवादी दल की स्थापना की गई, जिसके अध्यक्ष डॉ. लोहिया बने। चुनावी दंगलों में उन्होंने नेहरू के विरूद्ध चुनाव लड़े, चुनावों में हारे भी तथा विरोधी आन्दोलनों को संगठित किया और अन्त में १६६३ में वे अमरोहा (उ.प्र.) से संसद के सदस्य चुने गये।

आजादी के बाद भी वे राष्ट्र के पुनर्निमाण के लिए एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में ही अपना योगदान देते रहे, उन्होंने आम जनता और निजी भागीदारों से अपील की कि वे कुओं, नहरों और सड़कों का निर्माण राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए योगदान में भाग लें। डॉ. लोहिया ने प्रश्न उठाए कि भारत की अधिकांश जनता की एक दिन की आमदनी मात्र ३ आना थी जबकि भारत के योजना आयोग के आंकड़े के अनुसार प्रति व्यक्ति औसत आय १५ आना थी।

लोहिया ने उन मुद्दों को उठाया जो लम्बे समय से राष्ट्र की सफलता में बाधा उत्पन्न कर रहे थे, उन्होंने अपने भाषण और लेखन के माध्यम से जागरूकता पैदा करने, अमीर-गरीब की खाई, जातिगत असमानताओं और स्त्री-पुरूष असमानताओं को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने कृषि से संबंधित समस्याओं के आपसी निपटारे के लिए 'हिन्द किसान पंचायत' का गठन किया। वे सरकार की केन्द्रीकृत योजनाओं को जनता के हाथों में देकर अधिक शक्ति प्रदान करने के पक्षधर थे। अपने अन्तिम कुछ वर्षों के दौरान उन्होंने देश की युवा पीढ़ी के साथ राजनीति, भारतीय साहित्य और कला जैसे विषयों पर चर्चा की।

लोहिया अन्यायों एवं असमानताओं के विरूद्ध सात क्रान्तियों की चर्चा करते हैं, जिन क्रान्तियों के द्वारा विकसित देश में व्याप्त असमानताओं एवं अन्यायों के साम्राज्य का अन्त होगा। वे सात क्रान्तियाँ निम्नलिखित हैं :-

१. स्त्री-पुरूष के बीच समानता के लिए क्रान्ति;

२. राजनीतिक, आर्थिक तथा रंगभेद पर आधारित व्यवस्था के विरूद्ध क्रान्ति;

३. जाति-वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध क्रान्ति;

४. साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी दासता के विरूद्ध क्रान्ति तथा स्वतंत्रता और विश्व स्तर पर प्रजातांत्रिक शासन के लिए क्रान्ति;

ISSN: 2249-6661
Vol-43, No.-4, (I) October-December (2020)

५. आर्थिक समानता तथा नियोजित उत्पादन के लिए क्रान्ति;

६. निजी मामलों में अतिक्रमण के विरूद्ध क्रान्ति; तथा

७. शस्त्रों के विरूद्ध और सत्याग्रह के लिए क्रान्ति।

लोकतांत्रिक विचारधारा : चौखंभा राज्य की अवधारणा

डॉ. लोहिया ने देश की राजनीतिक संरचना की पुर्नरचना के लिये "चौखंभा राज्य" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनकी धारणा है कि राज्य की संस्था मानवीय-सामाजिक जीवन के न्यायपूर्ण संगठन के लिये आवश्यक है, लेकिन उसका आधुनिक संगठन दोषपूर्ण है। आधुनिक काल में राज्य के तीन प्रमुख प्रतिमान प्रचलित हैं – पूंजीवादी, साम्यवादी तथा गाँदीवादी विकेन्द्रीकृत राज्य। उनका मत है कि पूंजीवाद तथा साम्यवाद के द्वारा अफ्रीका-एशिया की समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। उनकी धारणा है कि मनुष्य के जीवन की दो मूल आवश्यकताएँ "स्वतंत्रता और रोटी" है जो कि एक दूसरे से 'अविभाज्य' हैं। पूंजीवाद तथा साम्यवाद इन दोनों मूल आदर्शों को अविभाज्य रूप में व्यक्ति को प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं। दूसरी ओर, साम्यवाद ने व्यक्ति की भौतिक आवश्यकता (रोटी) की समस्या आंशिक रूप से हल की है, किन्तु उसे उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया है, क्योंकि वहाँ न विरोधी दल का अस्तित्व संभव है, न लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का अस्तित्व, क्योंकि साम्यवादी व्यवस्था में साम्यवादी दल की निरंकुशता का शासन है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी साम्यवाद का रूप 'साम्राज्यवादी' है, जो राष्ट्रों को आधारभूत मानव-अधिकारों से वंचित रखता है। इस संबंध में डॉ. लोहिया कहते हैं कि "मैं साम्यवाद के सम्पूर्ण सिद्धान्त को नापसन्द करता हूँ' क्योंकि – 'उसके दाँत विषैले हैं।'

गाँधीवाद के कुछ आदर्शों के दृढ़निष्ठ अनुयायी होते हुए भी लोहिया ने गाँधीजी के कुछ 'बेहद कल्पनाशील' विचारों को स्वीकार नहीं किया। उनका कथन है कि गाँधीजी की 'आत्मनिर्भर ग्राम की अवधारणा, ग्रामीण गणतंत्र, चर्खा तथा प्रन्यास' के सिद्धान्त उसी प्रकार के 'बेहद कल्पना प्रधान' सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों को वे राज्य की पुनर्रचना के आधार मानने को तत्पर नहीं हैं। वे गाँधीजी के केवल विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, सत्य, अहिंसा, विकेन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था तथा सविनय अवज्ञा एवं सत्याग्रह के आदर्शों को सहर्ष स्वीकार करते हैं। इन तीनों प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं का मंथन करते हुए तथा उनकी अपूर्णताओं को त्यागते हुए डॉ. लोहिया इन तीनों विचारधाराओं में जो निहित अच्छाइयाँ दिखती हैं, उन्हें स्वीकार करते हैं और उन आदर्शों के आधार पर वे अपने "चौखंभा" राज्य की अवधारणा विकसित करते हैं।

डॉ. लोहिया ने पूंजीवाद एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं की उनकी अन्तर्निहित दुर्बलताओं को त्याग कर स्वयं की 'चौखंभा राज्य' की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। प्रस्तावित राज्य के चार आधारखंभे हैं – ग्राम, जिला, प्रदेश और केन्द्र। डॉ. लोहिया का कथन है कि अभी तक का राज्य केवल दो खंभों – केन्द्र तथा प्रान्त पर आधारित रहा है तथा जिसकी व्यवस्था में राज्य की संप्रभुता केवल केन्द्र की सरकार में केन्द्रित रही है। इस व्यवस्था का दोष है कि राज्य की सारी वैधिक शक्ति का केन्द्र में केन्द्रीयकरण है तथा प्रशासन की सारी शक्तियों का बंटवारा केन्द्रीय सरकार एवं प्रान्तीय सरकारों के बीच कर लिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप जिला स्तरीय एवं तृणमूल स्तरीय इकाइयों के प्रशासनिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति कतई नहीं रहती। इन इकाइयों को प्रशासन की शक्तियों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने की एवं स्थानीय स्तर पर आत्मशासी निर्णय लेने की कोई शक्तियाँ नहीं रहती। लोहिया के प्रतिमान में वैधिक सर्वोच्च सत्ता को केन्द्र के एकाधिकार से मुक्त करके सम्प्रभुता की शक्ति चारों इकाइयों को प्रदान कर दी जाती हैं। इस प्रकार अब राज्य की चार इकाइयाँ हैं : सम्प्रभु ग्राम, सम्प्रभु जिला, सम्प्रभु प्रान्त तथा सम्प्रभु केन्द्र। इस प्रकार की व्यवस्था संविधान द्वारा की जायेगी। राज्य के इन चार अंगों (खंभों) की सावयवी एकता रहेगी। ये चारों अंग परस्परवलंबी तरीके से कार्य करेंगे। इस व्यवस्था की लोहिया की आधारभूत मान्यता यह है कि ग्राम तथा जिले 'प्राथमिक राजनीतिक इकाइयाँ हैं, जहाँ स्त्री-पुरूषों के समूह जीवित रहते हैं और सम्पूर्ण समष्टि के हित के कार्य करते हैं।

सारांश

लोहिया ने हमेशा भारत की आधिकारिक भाषा के रूप में अंग्रेजी से अधिक हिन्दी को प्राथमिकता दी, उनका विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षित और अशिक्षित जनता के बीच दूरी पैदा करती है, वे कहते थे कि हिन्दी के उपयोग से एकता की भावना और नए राष्ट्र के निर्माण से सम्बन्धित विचारों को बढ़ावा मिलेगा। वे जात-पात के घोर विरोधी थे, उन्होंने जाति व्यवस्था के विरोध में सुझाव दिया कि "रोटी और बेटी" के माध्यम से इसे समाप्त किया जा सकता है। वे कहते थे कि सभी जाति के लोग मिलजुलकर खाना खाएं और उच्च वर्ग के लोग निम्न जाति की लड़कियों से अपने बच्चों की शादी करें। इस प्रकार उन्होंने अपने 'यूनाईटेड सोशलिस्ट पार्टी' में उच्च पदो के लिए हुए चुनाव के टिकट निम्न जाति के उम्मीदवारों को दिये और उन्हें प्रोत्साहन भी दिया। वे यह भी चाहते थे कि बेहतर सरकारी स्कूलों की स्थापना हो, जो सभी को शिक्षा के समान अवसर प्रदान कर सकें।

शब्दावली

समाजवाद : यह एक कल्याणकारी व्यवस्था है जिसमें नागरिकों के बीच निजमा न होकर कल्याण का समविभाजन होता है।

समताभाव : यह एक ऐसी विचारधारा है जिसमें किसी पंकार का भेदभाव न होकर सभी का एक स्तर होता है।

Copyright © 2020Authors

Sambodhi
(UGC Care Journal)
ISSN: 2249-6661
Vol-43, No.-4, (I) October-December (2020)

वैश्विक समाजवाद : यह ऐसी विचारधारा है जिसमें विश्व के सभी लोगों का विकास हो सके और वंचित लोगों को उनके अधिकार मिल सकें। इसमें वैश्विक कल्याण की भावना निहित होती है।

चौखंभा अवधारणा : डॉ. लोहिया राज्य की शासन व्यवस्था के लिए चार आधार खंभों की बात करते हैं जिसमें – ग्राम, जिला, प्रदेश और केन्द्र निहित हैं।

संदर्भ सूची

१. यादव, रामगोपाल, डॉ. लोहिया का समाजवाद,, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,२०१५

२. किशोर, गिरिराज, लोहिया के सौ वर्ष,, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, २०१३

३. चन्देला, लोकेश कुमार, अम्बेडकर और लोहिया का लोकतंत्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, २०१३

४. पुरोहित, बी.आर., आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,२०१०

५. लोहिया, राम मनोहर, समाजवाद की राजनीति, नव हिन्द, हैदराबाद,१९६८

६. लोहिया, राम मनोहर, भारत और समाजवाद,नव हिन्द, हैदराबाद,१९६८

७. लोहिया, राम मनोहर, समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, नव हिन्द हैदराबाद,१९६९

८. लोहिया, राम मनोहर ,समाजवादी चिंतन,नव हिन्द, हैदराबाद, १९६२

९. लोहिया, राम मनोहर, जाति प्रथा, नव हिन्द हैदराबाद,१९६४

१०. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, डॉ. लोहिया का जीवन दर्शन, किताब घर, दिल्ली,१९८७

११. जाटव,डी.आर.,गांधी,लोहिया और अम्बेडकर, समता साहित्य सदन, जयपुर,१९९९

GLOBALLY INDEXED

IMPACT FACTOR SJIF 2019 6.380

SRJIS

Online ISSN 2278-8808
Print ISSN 2319-4766

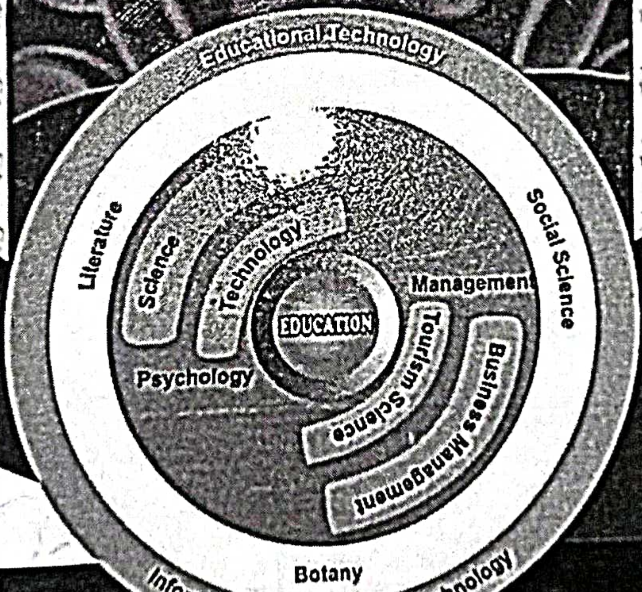

An International Peer Reviewed

Refereed Quarterly

SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

OCT-DEC, 2020, VOL. 9, ISSUE -45

EDITOR IN CHIEF : YASHPAL D. NETRAGAONKAR, Ph.D.

118

27. सरदार पटेल : महात्मा गाँधी एवं जवाहरलाल नेहरू के साथ संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

जनक सिंह मीना (204-209)

28. न्याय दर्शन : न्याय दर्शन में शब्द प्रमाण का महत्त्व

श्रीमती सविता निर्वाण (210-213)

29. माध्यमिक स्तर पर कार्यरत शिक्षकों की महिला अधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

धर्मेन्द्र ना. शंभरकर & अंजलि कुमारी (214-222)

30. घटता वाल लिंग अनुपात: एक गंभीर समस्या

Manisha Rani & Jyoti Tiwari (223-232)

31. 16TH Parliament, Its Affairs and Voters Perception

Devananda R. & GD Narayana (233-241)

32. Educational Technology in Teaching

Mrs. J. Aruna (242-248)

33. अभ्यासक्रम व पाठ्यक्रम : एक दृष्टिक्षेप

प्रा. लक्ष्मण वायळ (249-252)

JPM

SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES ISSN: 2319-4766
जनक सिंह मीना (204-209)

सरदार पटेल : महात्मा गाँधी एवं जवाहरलाल नेहरू के साथ संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

जनक सिंह मीना, **Ph. D.**

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

सारांश

सरदार वल्लभभाई पटेल के व्यक्तित्व एवं विचारों के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे एक सरल स्वभाव के सुलझे हुए इंसान थे जो सदैव दूसरों की सेवा एवं मदद करने को आतुर रहते थे। उनके अंदर अहंकार एवं घमण्ड नाममात्र को भी नहीं था। वे सदैव आगे आकर निस्वार्थभाव से काम करने में विश्वास करते थे। हालांकि उन पर कुछ निराधार आरोप लगाए जाते रहे हैं परन्तु उनमें यथार्थता कम और राजनीति का पुट अधिक है। अतः पटेल के विचार और संबंध दोनों ही मधुर, मजबूत एवं अटल रहे हैं। चूंकि पटेल में राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी अतः वे राष्ट्रहित के मुद्दों को बडी गम्भीरता से लेते थे और त्याग एवं समर्पितभावना से आगे बढते थे। गाँधीजी एवं नेहरू जी के साथ उनके संबंध व्यक्तिगत रूप से सौहार्द्रपूर्ण रहे परन्तु पटेल ने कभी अन्धानुकरण नहीं किया। वे सदैव तर्क एवं परिस्थितियों के अनुसार ही निर्णय करते थे। सरदार पटेल ने गाँधीवाद से प्रभावित होकर ही सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया था। वे नेहरूजी एवं गाँधीजी का बडा आदर एवं सत्कार करते थे परन्तु विचारों में मैतक्यता के साथ मतभेद भी व्यक्त करने में संकोच नहीं करते थे, इसके उपरान्त भी वे मनभेद कभी नहीं रखते थे।

मुख्य शब्द : स्वभाव, राश्ट्रीयता, गाँधीवाद, अन्धानुकरण, समकालीन , मनभेद. ।

प्रस्तावना

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति पूर्व में घटित घटनाओं, तथ्यों एवं सूचनाओं को क्रमवद्धता एवं तर्कसंगतता के साथ सिद्धांत निर्माण में सहायक होती है, जिससे भविष्यवाणी करने में मदद मिलती है। दूसरी ओर अध्ययन की तुलनात्मक अध्ययन पद्धति से वैज्ञानिकता आधारित तथ्य, सूचनाओं के माध्यम से नवीन ज्ञान का संचार होता है और सिद्धांत निर्माण की दिशा में मदद मिलती है। उक्त दोनों अध्ययन पद्धतियाँ सरदार पटेल के संदर्भ में भी सटीक वैठती हैं। प्रथमतः हम सरदार पटेल के प्रारम्भिक काल यानी बचपन, प्रौढ़, युवावस्था तथा वृद्धावस्था तक के जीवन, व्यक्तित्व, व्यवहार, कार्यशैली, समकालीन व्यक्तित्व, मित्र, सहकर्मी, काल एवं परिस्थितियों के माध्यम से ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का सहारा लेकर उनके संबंधों का विश्लेषण किया जा सकता है। द्वितीय प्रकार में हम सरदार पटेल के विचारों, विशेषताओं, व्यवहार, सिद्धांत आदि का दूसरे व्यक्तियों के साथ तुलना करके विश्लेषण कर सकते हैं, अतः यह तुलनात्मक अध्ययन पद्धति है। सर्वप्रथम हम यहाँ यह जानने का प्रयास करते हैं कि सरदार पटेल के समकालीन व्यवित कौन रहे हैं? सरदार के समकालीनों की वैसे तो एक लम्बी सूची है या यों कहें कि उनके समकालीनों की सूची तैयार करना आसान नहीं है परन्तु यहाँ प्रमुख समकालीन व्यक्तियों का उल्लेख किया जा रहा है जिनमें हैं– एम.एस. अणे–कांग्रेस के नेता, अनुग्रह नारायण सिंह–बिहार के भूतपूर्व वित्तमंत्री, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला–क मीर घाटी के नेता, राजकुमारी अमृतकौर–नेहरू मंत्रिमंडल में स्वास्थ्य मंत्री, एन.गोपालस्वामी अय्यंगर–नेहरू मंत्रिमंडल के मंत्री, यावर जंग

ISSN: 2319-4766

अली–निजाम के शासन में हैदराबाद के एक मंत्री, सर क्लॉड आचिन लेक–1941 में भारत के प्रधान सेनापति, मौलाना अबुल कलाम आजाद–1939–46 कांग्रेस अध्यक्ष, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर–नेहरू मंत्रिमंडल में विधि मंत्री, ए.वी. एलेक्जेन्डर–कैबिनेट मि न 1946 के सदस्य, के. एम. करिअप्पा–1949–53 भारतीय सेना के प्रधान सेनापति, सर स्टेफोर्ड क्रिप्स–कैबिनेट मि न 1946 के सदस्य, अब्दुल गफ्फार खान–सीमाप्रांत के गांधी, लियाकत अली खान–विभाजन के बाद पाकिस्तान के प्रधानमंत्री, इंदिरा गांधी–भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री, वी.वी. गिरि–भारत के पूर्व राष्ट्रपति, जयप्रकाश नारायण–समाजवादी पार्टी के संस्थापक, जाकिर हुसैन–शिक्षा ास्त्री एवं भारत के पूर्व राष्ट्रपति, मौहम्मद अली जिन्ना–विभाजन के बाद पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर जनरल, पुरुषोत्तमदास टंडन–1950 में कांग्रेस अध्यक्ष, मोरारजी देसाई–कांग्रेसी नेता, गुलजारीलाल नंदा–बम्बई प्रांत के मंत्री(1946–50), सरोजनी नायडू–उत्तरप्रदेश की भूतपूर्व राज्यपाल, के.सी. नियोगी–नेहरू मंत्रीमंडल के मंत्री, जवाहर लाल नेहरू–भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, मणिबहन पटेल–सरदार पटेल की पुत्री, गोविंदवल्लभ पंत–उत्तर प्रदेश कांग्रेस नेता, सुभाषचंद्र बोस(नेताजी)–आजाद हिंद सरकार तथा फौज के मुखिया, गोकुलभाई भट्ट–राजस्थान कांग्रेसी नेता, विनोबा भावे–गांधीवादी नेता, लॉर्ड माउंटबेटन–भारत के वायसरॉय तथा गवर्नर जनरल, जी.वी. मांवलकर–कांग्रेसी नेता, के.एम. मुंशी–नेहरू मंत्रिमंडल में मंत्री, श्यामाप्रसाद मुखर्जी–हिन्दु महासभा के नेता, वी.के. कृष्ण मेनन–नेहरू के घनिष्ट मित्र, वी.पी. मेनन–सरदार पटेल के सचिव, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद–गांधी, नेहरू तथा सरदार के घनिष्ट सहयोगी, भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति, लालबहादुर शास्त्री–भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री, हीरालाल शास्त्री–1949 में राजस्थान के मुख्यमंत्री आदि।

उपरोक्त वर्णित सूची में उल्लेखित व्यक्तियों के व्यक्तित्व, चिंतन, दर्शन, कार्यों एवं विचारधारा के आधार पर अध्ययन की ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियों का उपयोग कर सरदार पटेल के संबंधों का वि लेषण कर सकते हैं। अब प्रमुख तथ्यों, सूचनाओं एवं विचारों से उनके बीच के संबंधों को रेखांकित करने का प्रयास किया है, जिसमें सरदार पटेल के संबंधों को गांधी एवं नेहरू के साथ विश्लेषित कर रहे हैं।

सरदार पटेल और महात्मा गाँधी के संबंध

भारत के इतिहास में तीन व्यक्तियों–महात्मा गाँधी, वल्लभभाई पटेल एवं जवाहरलाल नेहरू का ऐसा समावेश था जिन्होंने राष्ट्र निर्माण के लिए सब कुछ न्यौछावर किया। देश के तीनों ही कर्णधारों ने भारत की स्वतंत्रता और फिर उसका पुनर्निर्माण करने में अपनी महत्ती भूमिका निर्वहन की। महात्मा गाँधी का दर्शन मानवता के लिए ऐसा मार्ग था जिसका अनुसरण कर कठिन से कठिन कार्य सरल रूप में परिणत हो जाता है। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व में सफल राजनीतिक कला एवं नेतृत्व क्षमता थी जिसने पूरे देश में अमिट छाप छोड़ी। वल्लभभाई पटेल के गाँधी के

सम्पर्क में आने और उनके दर्शन से प्रभावित होकर उनके सिद्धांतों को अपने जीवन में उतारते गए। गाँधी ने सत्य, अहिंसा के मार्ग से जिस सत्याग्रह का पथ प्रशस्त किया उसको व्यवहार में लाने और पूरे देश में उसके आधार पर जनता को एकता की डोर में बांधने का असली कार्य सरदार पटेल ने ही किया।

इसमें कोई दोराय नहीं कि सरदार पटेल और महात्मा गाँधी के बीच संबंध निकटस्थ रहे ऐसा उनके लेखन, विचारों, भाषणों एवं पत्र व्यवहारों में मिलता है। पटेल स्वयं भी मानते थे, "गाँधीजी से मिलने से बहुत पूर्व मेरी राजनीति के प्रति रूचि थी पर उस समय भारत का कोई राजनीतिक दल मुझे आकर्षित नहीं कर सका। हाँ, आरामकुर्सी पर राजनीति बघारने वाले कई नेता मौजूद थे और बंगाल तथा महाराष्ट्र में अराजकता फैलाने वाले भी काफी क्रिया ील थे। तब गाँधी का मंच पर आगमन हुआ और उनमें मुझे वह नेता दिखाई पड़ा जिसका अनुयायी बना जा सकता था।"[1] पटेल और गाँधी के बारे में पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है–"जिस दिन से वल्लभभाई ने गाँधीवादी उपासना पद्धति, जिंदगी के गाँधीवादी रीति–रिवाज और गाँधीजी के सिद्धांत अपनाये, तब से एक ऐसे भक्त प्रमाणित हुए, जिन्होंने कभी गाँधीजी के फैसले और राय में सन्देह नहीं किया।"[2] सरदार पटेल ने महात्मा गाँधी जी को स्वीकारा तो यह सोच समझकर कि स्वतंत्रता पाने के लिए गाँधीजी के मार्गदर्शन में काम करना उनका कर्त्तव्य है क्योंकि शांति और अहिंसा के मार्ग से स्वराज्य सिद्ध करने का रामबाण उपाय गाँधीजी ही जानते हैं।

"1918 के बाद से गाँधीजी के प्रति पूर्ण आस्था द ाते हुए कहा कि मैंने अपने ऊपर ताला लगाकर चाबी महात्मा गाँधी को सौंप दी है। यद्यपि आव यक नहीं कि हर बात में विचार उनसे पूरी तरह मिलते हों, लेकिन अंत में उनका फैसला मान लेते थे। गाँधीजी को स्वीकारा तो पूरा स्वीकारा, वोटिंग के समय देखते रहते थे कि गाँधीजी का हाथ किधर उठ रहा है। गाँधीजी ने जिधर हाथ उठाया, उधर ही अपना हाथ उठाते।"[3] एस.के. पाटिल ने गाँधीजी और वल्लभभाई के पारस्परिक संबंधों के बारे में लिखा है, "जब से सरदार ने गाँधीजी का नेतृत्व स्वीकार किया, तब से वे हमे ा गाँधीजी की इच्छा के प्रमुख प्रवर्तक रहे। यह दोनों समान व्यक्ति एक विचित्र युग्म हैं– गाँधीजी और सरदार जितने एक–दूसरे से अभिन्न हैं, उतने ही परस्पर एक दूसरे के भक्त। साधारणतया पहला व्यक्ति सोचता है और दूसरा अपनी अपूर्व प्रयोजनात्मक एकता के साथ उसे कार्यान्वित करता है।"[4] महात्मा गाँधी ने पटेल के जेल में बिताये गये दिनों को याद करते हुए 8 मई, 1933 को लिखा "मेरे जीवन में महानतम सुखों में से एक था कि मुझे सरदार के साथ जेल में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं उनके अजेय साहस तथा देश के लिए अद्वितीय प्रेम के बारे में जानता था, लेकिन उनके साथ 16 महीने का लंबा समय बिताने का सौभाग्य पहले कभी मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। उनके अनुराग और प्रेम से मैं इतना अभिभूत हो गया कि मुझे अपनी प्रिय

माँ का स्मरण हो आया। मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उनमें मातृवत् स्नेह जैसे गुण मौजूद हैं।"[5] इसमें पटेल और गाँधी के आत्मीय संबंध, वि वास, सम्मान स्पष्ट झलकता है।

सरदार पटेल मानवतावादी थे लेकिन एक सीमा तक, यदि देश की अखण्डता को कोई व्यक्ति हानि पहुँचाये या किसी व्यक्ति से किसी समुदाय को हानि होती हो तो सरदार एक सीमा के बाद उस व्यक्ति से दृढ़ता से पेश आते थे। ऐसा भी नहीं है कि सरदार पटेल आँखे मूंद कर बिना सोच विचार किए हुए गाँधीजी की सभी बातों पर सहमति व्यक्त करते थे। 1940 के आसपास पटेल और गाँधी के बीच कुछ मतभेद भी देखने को मिले– द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटिश शासन भारतीय जनसहयोग चाहता था और गाँधीजी इसके पक्ष में थे परन्तु सरदार पटेल इसके विरोध में थे और उन्होंने गाँधीजी को लिखा–"मैं आपकी आज्ञा या सूचना के अनुसार चलने को तैयार हूँ परन्तु आप यह कहें कि इस विषय में मुझे अपनी मान्यता के अनुसार आचरण करना चाहिए तो मैं यह मानता हूँ कि युद्ध पूरा होने के बाद भारत को पूर्ण स्वतंत्रता देने की शर्त पर अंग्रेज सरकार की सहायता करने में मेरे किसी व्रत का भंग नहीं होता।"[6] दूसरा उदाहरण क मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण के बाद भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान को 55 करोड़ रूपये की रकम पर गाँधीजी और पटेल के बीच मतभेद थे जिसे 15 फरवरी 1948 को सरदार ने कहा कि– "मैंने इस बात पर बल दिया कि पाकिस्तान के साथ सारे समझौते एक साथ तय करके सभी मामले सुलझाये जायें। मैं इस बात पर कभी सहमत नहीं हो सकता था, कि लाभ सब उनको मिलें किन्तु घाटा हमारे सिर लादा जाये। पटेल का अधिक विरोध इस कारण भी था कि पाकिस्तान इस रूपये का प्रयोग भारत के विरूद्ध क मीर में करेगा लेकिन गाँधीजी ने उसके विरूद्ध सत्याग्रह कर दिया जिसके परिणामस्वरूप दे । में गम्भीरता पैदा हो गयी, अतः सरकार ने वह रूपया देने का निर्णय किया। सरदार ने दिल से कभी इस कार्य की सहमति नहीं दी।"[7]

23 नवंबर 1921 को गृह विभाग (वि ोष) एफ संख्या 554/1921–22 बंबई पुरातन से प्रांत जानकारी के आधार पर सरदार पटेल ने गाँधीजी के सत्याग्रह स्थगित करने के कदम का विरोध जो इस प्रकार है– गाँधीजी ने प्रस्ताव किया कि सविनय अवज्ञा स्थगित किया जाना चाहिए। वल्लभभाई पटेल, एन.सी. केलकर, कोंडा वेंकटापैया और वी. जे.पटेल स्थगन के विरूद्ध थे और उनका कहना था कि गाँधीजी को कार्य समिति की सलाह लिये बिना सविनय अवज्ञा को स्थगित करने की घोषणा समाचार पत्रों द्वारा करने का अधिकार नहीं था।.....[8]

19 जुलाई 1940 को गुजरात प्रांतीय समिति के समक्ष अहिंसा के प्र न पर पटेल ने अपनी मन स्थिति का वर्णन करते हुए कहा था,–" मौजूदा परिस्थिति में अहिंसा का सम्पूर्ण प्रयोग करना कांग्रेस के लिए संभव नहीं। हमारी शक्ति के अंदाज के बारे में गांधीजी और हमारे बीच मतभेद हैं। समाज पर अत्याचार करने वालों के साथ आव यक हिंसा का इस्तेमाल किए बिना काम चल सकता मेरी बुद्धि के बाहर है। वल्लभभाई पटेल की गाँधीजी के प्रति वास्तविक श्रद्धा थी लेकिन

यह उसी प्रकार थी जिस प्रकार एक व्यावहारिक और यथार्थवादी मनुष्य की एक आदर्शवादी के प्रति होती है। हम कह सकते हैं कि गाँधी और पटेल के संबंध गुरू–शिष्य की तरह अव य थे परन्तु अन्धानुकरण प्रवृत्ति नहीं थी। पटेल ने गांधीजी के सत्य, अहिंसा सत्याग्रह में पूर्ण वि वास किया लेकिन गांधी महात्मा थे और पटेल भारत के सरदार अतः जहाँ तक संभव होता पटेल महात्माजी के सिद्धांतों का पालन करते अन्यथा स्वयं निर्णय लेते और कहते कि गाँधीजी पूर्णतया सिद्धांतवान हैं और उसी के अनुसार वे व्यवहार करते थे। अतः सार रूप में कहा जा सकता है कि गाँधीजी और पटेल के बीच मतभेद हो सकते हैं परन्तु कभी मनभेद नहीं रहे।

वल्लभभाई पटेल और जवाहरलाल नेहरू के बीच संबंध

सरदार पटेल और नेहरू की प्रकृति में असमानता थी, एक ओर पटेल एक साधारण किसान परिवार से ग्रामीण परिवेश में पले बड़े हुए, वहीं नेहरू को पारिवारिक विरासत का धनी कहा जा सकता है। व्यक्ति अपनी प्रकृति का अनुसरण करके ही कार्य कर सकता है। ऐसा प्रतीत होता है पटेल और नेहरू दोनों के लिए मार्गदर्शी महात्मा गाँधी ही थे और जो कुछ सामंजस्य या वैचारिकता का आदान–प्रदान रहता उसमें उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी, क्योंकि महात्मा गाँधी समय की नजाकत को पहले ही भांप लेते थे। सरदार पटेल भी ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे जिससे गाँधीजी को ठेस पहुँचे परन्तु जब मामला राष्ट्रहित का होता या भविष्य की संभावनाओं को देखते हुए मत भिन्न होता तो वे गाँधीजी को इशारे संकेत करते थे और आव यकता होने पर विरोध भी जताते थे। पटेल और नेहरू दोनों को ही आधुनिक भारत का निर्माता माना जाता है और दोनों में अनेक समानताओं के होते हुए भी वैचारिक भिन्नता थी। दोनों में ही राष्ट्र भक्ति, नेतृत्व क्षमता, आदर्शों के प्रति आस्था थी। डॉ. बी.के. केसकर ने कहा था–"नेहरू और पटेल दो विरोधी तत्वों का एक ऐसा मिश्रण थे, जो एक–दूसरे के पूरक थे।"[9] नेहरू की विचारधारा साम्यवाद से प्रभावित थी जबकि पटेल ने किसी भी विचारधारा को अपने पर हावी नहीं होने दिया। इन विपरीत स्वभावों से जुड़ी दोनों धुरियों को महात्मा गाँधी ने एक साथ बांधे रखने का कार्य किया था। हालांकि सरदार पटेल और नेहरू दोनों का सपना एक मजबूत भारत का निर्माण करना था परन्तु पटेल वास्तविक एवं व्यवहारिक दृष्टिकोण से समस्या पर विचार करते थे और प्रत्येक समस्या के भविष्य के परिणामों का अंदाजा लगा लेते थे। उदाहरण के तौर पर जूनागढ़ और हैदराबाद के मामले में पटेल ने नेहरू की इच्छा के विरुद्ध जाकर कार्यवाही की और भारत में मिला लिया। क मीर के मामले में नेहरू ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति के कारण बिना पटेल से विचार विमर्श किए समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले गए जिसके पटेल सख्त विरोधी रहे और समस्या आज तक बनी हुई है। इसी प्रकार चीन की मित्रता पर भी पटेल ने कभी विश्वास नहीं किया बल्कि संभावित खतरों की ओर पहले ही ईशारा कर दिया था। नेहरू ने 1 अगस्त 1947 को सरदार पटेल को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने लिखा कि मैं आपको मंत्रिमंडल में सम्मिलित होने का निमंत्रण देने के लिए

लिख रहा हूँ। इस पत्र का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि आप तो मंत्रिमंडल के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। इसी के उत्तर में पटेल ने नेहरू को लिखा कि एक अगस्त के पत्र के लिए धन्यवाद। एक–दूसरे के प्रति हमारा जो अनुराग व प्रेम रहा है तथा 30 वर्ष की हमारी जो अखंड मित्रता है, उसे देखते हुए औपचारिकता के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। आ ा है कि मेरी सेवाएं बाकी के जीवन के लिए आपके अधीन रहेंगी। आपको इस ध्येय की सिद्धि के लिए मेरी संपूर्ण वफादारी और निष्ठा प्राप्त होगी, जिसके लिए आपके जैसा त्याग और बलिदान भारत के अन्य किसी ने नहीं किया है। आपने अपने पत्र में मेरे लिए जो भावनाएं व्यक्त की हैं, उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ।

सरदार पटेल वचन के पक्के तथा सहयोग से काम करने वाले व्यक्ति थे जबकि जवाहरलाल नेहरू महत्वाकांक्षी अधिक थे लेकिन महत्वाकांक्षी होते हुए भी पटेल की योग्यता पर पूर्ण वि वासी थे। गाँधीजी की मृत्यु उपरांत 3 फरवरी 1948 को पं. नेहरू ने पटेल को लिखा–"बापू की अन्तिम अभिलाषा यह थी हम दोनों ने अब तक जिस तरह कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया है, उसी तरह आगे भी करते रहें। हमारे मतभेदों में से भी हमारे बीच महत्व के विषयों में जो मतैक्य है, वह स्पष्ट रूप से सामने आ चुका है और उसी में से एक दूसरे के प्रति हमारा आदर भाव भी प्रकट हुआ है।"[10]

निष्कर्ष

सार रूप से कहा जा सकता है कि पटेल और नेहरू के बीच संबंध मिश्रित रहे परन्तु उनके विचारों में एकता, सौहार्द के साथ मतभेद भी थे। पटेल ने कभी मतभेदों को छुपाया नहीं अपितु खुलकर नेहरूजी के सामने रखा और न ही कभी मनमुटाव रखा क्योंकि उनके मन में किसी प्रकार का दुराव या वैमनस्य नहीं रहा। इससे स्पष्ट है कि दोनों के संबंध मैत्रीपूर्ण रहे और मतभेद तो रहे परन्तु कभी मनभेद नहीं होने दिए।

संदर्भ सूची

शरद सिंह, सरदार वल्लभभाई पटेल, सामयिक प्रकाभान, नई दिल्ली, 2016, पृ.189–190
पट्टामि सीतारमैय्या, सचमुच एक सरदार, पटेल अभिनंदन ग्रन्थ, पृ 9
साक्षात्कार माननीय मोरारजी देसाई भूतपूर्व प्रधानमंत्री, बम्बई, 12 अगस्त 1985
पूर्वोक्त, शरद सिंह, पृ.190
पी.एन.चौपड़ा, व प्रभा चौपड़ा(सं), सरदार पटेल, गाँधी, नेहरू एवं सुभाष, प्रभात प्रकाभान, दिल्ली 206 पृ.131
रवीन्द्र कुमार, सरदार वल्लभभाई पटेल के सामाजिक व राजनीतिक विचार, मितल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1991, पृ.169
उपरोक्त, पृ 169
पूर्वोक्त, पी.एन. चौपड़ा व प्रभा चौपड़ा, पृ.155
पूर्वोक्त, शरद सिंह, पृ.202
पूर्वोक्त, रवीन्द्र कुमार, पृ. 173

GOVT. OF INDIA- RNI NO. UPBIL/2014/56766
UGC Approved Care Listed Journal
ISSN 2348-2397

शोध सरिता

An International Multidisciplinary Quarterly
Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal

• Vol. 7 • Issue 26 (II) • April to June 2020

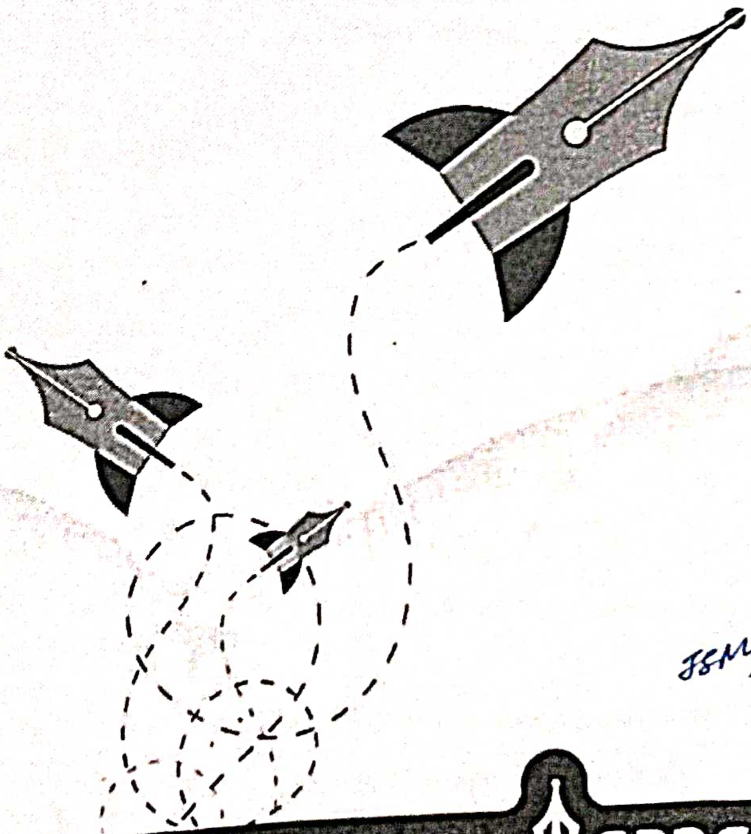

Editor in Chief
Dr. Vinay Kumar Sharma
D. Litt. - Gold Medallist

sancHar
Educational & Research Foundation

42.	युग प्रवर्तक गुरु नानक देव	सुमन रानी डॉ. सुनील कुमार	180
43.	विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सृजनात्मकता का प्रभाव	मधु गुप्ता डॉ0 रेखा शुक्ला	184
44.	सरदार वल्लभभाई पटेल के चिंतन की प्रासंगिकता	डॉ0 जनक सिंह मीना	188
45.	ग्रामीण मुस्लिम समुदाय में दहेज : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ0 मन्जू पनेरू कु. शहनाज	192
46.	शिक्षा में औपचारिक मूल्यांकन : एक सिंहावलोकन	डॉ0 किरण कुमारी	197
47.	साम्प्रदायिकता और भीष्म साहनी की कहानियाँ	डॉ0 गुलाम फरीद साबरी	201
48.	डिजिटल मीडिया के दौर में समाचार पत्र	पवन कौंडल	206
49.	वर्तमान समय में राजनीती एंव धर्म के क्षेत्र में धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता	डॉ0 कृष्णा गायकवाड	209
50.	हरिश्चन्द्र वर्मा के काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति	डॉ0 महेश 'दिवाकर' कु0 सिमरनजीत कौर	213
51.	दो पीढ़ी के अन्तराल की कथा (बूढ़ी काकी, चीफ की दावत, वापसी)	डॉ0 कीर्ति पन्त	217
52.	वर्तमान शासकों के लिए वेदकालीन राजा के कर्त्तव्यों की उपादेयता	अमृता	221
53.	योग में शारीरिक साधना के साधन एवं उनकी उपयोगिता (अन्नमय कोश के परिप्रेक्ष्य में)	एकता	224
54.	वेदानुसार आत्मविद्या, प्राण एवं प्रज्ञालोक का विवेचन	ज्योति	227
55.	वर्तमान सन्दर्भ में पंच महायज्ञ की शिक्षा की उपयोगिता	कर्मवीर	230
56.	सुमित्रानंदन पंत के काव्य में चित्रित प्रेम के विविध स्वरूप	डॉ0 जयलक्ष्मी एफ. पाटील	233
57.	प्रवासी भारतीय साहित्यकार सुनीता जैन के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन के विविध संदर्भ	डॉ0 नवनाथ गाड़ेकर	238
58.	समकालीन हिंदी काव्य में समाज	प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम घवरे	242
59.	कृषक जीवन–संघर्ष : समकालीन कविता के संदर्भ में	डॉ0 उमा देवी	245
60.	डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' : सामान्य जन के वजूद का कथाकार	डॉ0 सुनीता देवी	249
61.	हिन्दी नवजागरण में राष्ट्रीय चिन्तन	दिनेश सिंह	253

ISSN - 2348-2397
APPROVED UGC CARE

SHODH SARITA

SHODH SARITA
Vol. 7, Issue 26 (II), April-June, 2020
Page Nos. 188-191

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

सरदार वल्लभभाई पटेल के चिंतन की प्रासंगिकता

डॉ० जनक सिंह मीना*

शोध सारांश

सरदार पटेल ने देश को एक देसी दिशा दी जिससे हम आज एक ऐसे भारत में रह रहे हैं जहाँ खुले में श्वास ले पा रहे हैं। उन्होंने अपनी सूझबूझ एवं दूर दृष्टिकोण ने देश को एकता और अखण्डता की डोर में बांधकर पूरी राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था को सरल बना दिया। अक्सर पटेल के विचारों को लेकर अनेकानेक प्रश्न उठाए जाते रहे हैं परन्तु तर्क और तथ्य ये स्पष्ट करते हैं कि वे देश के लिए सब कुछ न्यौछावर करने वाले, गाँधी दर्शन के समर्थक एवं राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थे। उन पर लगाए जाने वाले सारे आरोप निराधार एवं अतार्किक हैं। वे अपने विचारों में स्पष्टता, पारदर्शिता एवं हर संभव दूरदर्शिता रखकर राष्ट्र को पहले रखते थे। पटेल के विचारों में मतभेद अवश्य होते थे परन्तु कभी मनभेद नहीं रखते थे। वे कभी अन्धानुकरण भी नहीं करते थे परन्तु सम्मान एवं त्याग की मूर्ति थे। वे सभी को साथ लेकर चलने की सोच रखते थे और विभाजन को भी अंतिम विकल्प एवं राष्ट्रहित में चुना। उन्होंने आंदोलनों का संचालन अहिंसा के मार्ग पर चल कर किया तथा देशी रियासतों का एकीकरण भी बिना हिंसा के किया। सार रूप में कहा जा सकता है कि सरदार पटेल राष्ट्र निर्माता थे और उनके विचारों में अथल गहराई थी इसलिए वे आज भी प्रासंगिक हैं।

Keywords : अखण्डता, परखशक्ति, गांधीवादी, राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता।

भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में तीन महापुरूष अद्वितीय रहे जिनमें महात्मा गाँधी, पं. जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल जिन्होंने देश की स्वतंत्रता और राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए तन, मन, धन से कार्य किया। इन तीनों में हरेक में अपनी-अपनी कार्यशैली एवं विलक्षण प्रतिभाएँ रही। महात्मा गाँधी को देश को सत्य व अहिंसा के मार्ग पर ले जाने का गौरव प्राप्त है। सेठ गोविन्द दास ने कहा था "गाँधीजी के चतुर्दिक व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर हमें उनके अगणित अनुयायियों में चार ऐसे प्रकाश पुंज दिखाई देते हैं, जिन्होंने अपने जीवन द्वारा गाँधीजी की मूल प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया है। इनमें गांधीजी की आध्यात्मिक धारा का आचार्य विनोबा भावे ने, उनके आचरण की पवित्रता का डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने, उनकी राजनैतिक सूझ-बूझ और दूरदर्शिता का जवाहर लाल नेहरू ने तथा उनके दृढ़ कर्मठ और व्यावहारिक विचारों का सरदार पटेल ने।"[1] सरदार वल्लभभाई पटेल का जीवनकाल 31 अक्टूबर 1875 से 15 दिसम्बर 1950 तक ऐसा काल रहा जिसमें मानो देश को उनकी इसी रूप में आवश्यकता हो। वे त्याग की भावना से परिपूर्ण, सेवा के लिए आतुर, निःस्वार्थता के प्रहरी, श्रद्धाशीलता, स्पष्टवादिता, आशावादी, परखशक्ति, विरोधी को जीतने की कला, दूरदृष्टि दृष्टिकोण, सत्य एवं अहिंसा के मार्ग के अनुयायी, नैतिकता एवं अनुशासन के पक्के, आत्मसम्मानी, समानतावादी, स्वयंभूवादी विचाराधारा के पोषक, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं पालक, प्रायश्चितवादी, मर्यादाशील, स्वच्छताप्रिय, विजित प्रकृति, दृढ़ता के प्रतीक, निर्णय शक्ति के धनी, निर्भीक एवं निडर, साहसी, संयम, धैर्य के पुजारी, स्वतंत्र एवं विनोद प्रकृति स्वभावी, राष्ट्रवाद से ओतप्रोत, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण वाले सादा जीवन उच्च विचारों वाले व्यक्तित्व से परिपूर्ण व्यक्ति थे। वे स्थिति की तह तक गये और देश की समस्याओं के मर्म को समझने में देरी नहीं की। उनकी अंतर्दृष्टि सुस्पष्ट थी, उनकी समझ सुनिश्चित और कार्य प्रणाली सीधी थी।

एस.के. पाटिल ने सरदार पटेल के लिए कहा-"जब से सरदार ने गांधीजी का नेतृत्व स्वीकार किया, तब से वे हमेशा गांधीजी की इच्छा के प्रमुख प्रवर्तक रहे। यह दोनों महान व्यक्ति एक विचित्र युग्म हैं-गांधीजी और सरदार जितने एक-दूसरे से अभिन्न हैं, उतने ही परस्पर एक दूसरे के भक्त। साधारणतया पहला व्यक्ति सोचता है और दूसरा अपनी अपूर्व प्रयोजनात्मक एकता के साथ उसे कार्यान्वित करता है।"[2] इसी पर पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा कि-"जिस दिन से वल्लभभाई ने गांधीवादी उपासना पद्धति, जिन्दगी के गांधीवादी रीति-रिवाज और गांधीजी के सिद्धान्त अपनाये, तब से वे एक भक्त साबित हुए,

*सहायक प्रोफेसर – राजनीति विज्ञान, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

जिन्होंने कभी गांधीजी के फैसले और राय में शक नहीं किया।"
इससे साफ जाहिर है कि सरदार पटेल ने अपने जीवन में पूरी
तरह गांधीवादी दर्शन को ग्रहण किया और उसे जीवन में
उतारकर उसके अनुरूप व्यवहार भी किया। सरदार वल्लभभाई
पटेल पर गांधीजी के अन्धभक्त होने की बात अक्सर कही जाती
है, परन्तु तर्क और तथ्यों से स्पष्ट होता है कि पटेल गांधीजी के
बताये हुए रास्तों पर चलते थे, उनसे सलाह लेते थे, उनका
आदर और सम्मान भी खूब करते थे और जहाँ तक संभव
हो सकता था उनका अनुसरण भी करते थे। ऐसे अनेक
दृष्टांत देखे जा सकते हैं, जब पटेल ने गांधीजी का पूरा
सहयोग एवं अनुसरण किया, वे गांधीवादी दर्शन से
प्रभावित रहे जिसमें सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर चल
कर कार्य किया। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें
सरदार पटेल की गांधीजी से भिन्न राय के साथ-साथ चलना भी
भिन्न रही। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार कांग्रेस का
समर्थन चाहती थी परन्तु युद्ध के उद्देश्य स्पष्ट नहीं थे। इस बाबत
में सरकार से पूछा तो कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिला और
मंत्रिमण्डलों से विरोध स्वरूप त्याग पत्र दे दिए। सरदार पटेल
ने कहा कि जब तक अंग्रेज हुकूमत भारत को पूर्ण
स्वायत्तता देने का वचन नहीं देती, भारत युद्ध में भाग नहीं
लेगा। उनका दृष्टिकोण नितांत व्यावहारिक था। उस वक्त
अंग्रेजों को गरज थी। महात्मा गांधी पटेल की राय से
सहमत न हुए। उन्होंने तर्क दिया कि इस संकट की घड़ी
में भारत को बिना शर्त युद्ध में ब्रिटेन का साथ देना चाहिए।
जवाब में वल्लभभाई ने कहा कि 'युद्ध में साथ देने के लिए
पूर्ण स्वायत्तता की माँग रखने से अहिंसा के सिद्धान्त का
किसी भी तरह उल्लंघन नहीं होता। वह बापू के अनन्य
अनुयायी थे। राजाजी राजगोपालाचारी ने कभी उनके बारे
में कहा था कि गांधीजी के बहुत से अंधभक्त हैं, लेकिन
पटेल उनके ऐसे विलक्षण भक्तों में से हैं, जिनके विशाल
नेत्र हैं, जिनसे वह सब कुछ स्पष्ट देखने की क्षमता रखते
हैं। पर फिर भी वह कई बार वास्तविकता से आंखे मूंदकर
गांधीजी का अंधानुकरण करते हैं।' इससे एक बात तो स्पष्ट
हो जाती है कि सरदार पटेल गांधीजी का मान सम्मान करने में
कोई कंजूसी नहीं करते थे और न ही कोई मौका हाथ से जाने देते
थे। वे गांधी दर्शन को अपने जीवन में एक सीमा तक
उतारते और जब पानी सिर से ऊपर से निकले तो वे दृढ़ता
से पेश आते थे, वे राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद पर किसी
प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं थे। उनके मन में
किसी के प्रति कोई द्वेष या वैरभाव भी नहीं था। वे मतभेद
अवश्य रखते थे परन्तु कभी मनभेद नहीं रखा।

वी शंकर ने लिखा है-"बेशक, सरदार हिन्दू थे और
हिन्दू होने में वे गौरव का अनुभव करते थे। हिन्दू होना
कोई राष्ट्रीय अपराध नहीं है, न अनावश्यक रूप से इसका
अर्थ है कि मुस्लिम विरोधी होना। सरदार ने हमेशा ही
अपने भाषणों में यह स्पष्ट किया था कि किसी वफादार
मुसलमान को भारतीय संघ में वही संरक्षण और
विशेषाधिकार पाने का अधिकार है, जो एक वफादार हिन्दू
को है। अगर वे किसी के प्रति कठोर थे तो उन मुसलमानों
के प्रति, जिन्होंने स्वतंत्रता से पूर्व मुस्लिम लीग का समर्थन
किया था और स्वतंत्रता के बाद भी पाकिस्तान जाने का
विचार करते थे अथवा उस उपनिवेश के प्रति सहानुभूति
रखते थे।" एक घटना अक्टूबर 1930 की है, जब जवाहरलाल
नेहरू ने अपनी संभावित गिरफ्तारी के कारण कार्यकारी अध्यक्ष
सरदार पटेल को नामांकित कर दिया था। सरदार पटेल ने
कार्यभार ग्रहण करने के बाद देश का एक तूफानी दौरा किया और
कांग्रेस के संदेश को लोगों तक पहुँचाया तथा इस बात पर जोर
दिया कि विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया जाए। उन्होंने अपने
श्रोताओं को यह भी बताया कि जनता परिषद में सांप्रदायिक
प्रतिनिधित्व और सीटें नहीं चाहती। उनकी समस्या भूख और रोटी
है। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर देते हुए उन्होंने इस विचार का
खंडन किया कि मुस्लिम इस राष्ट्रीय आंदोलन में भाग नहीं ले रहे
हैं।

वास्तविकता यह है कि सरदार वल्लभभाई के विचारों में परिवर्तन 1937 के बाद आया, जब मुस्लिम लीग कांग्रेस को अपना घोर विरोधी समझने लगी और मुसलमानों पर अत्याचार का झूठा दुष्प्रचार कर रही थी। पटेल को यह आभास हो चुका था कि मुस्लिम लीग कांग्रेस की उदारवादी नीति का नाजायज फायदा उठाना चाहती है, जो पाकिस्तान द्वारा आज भी जारी है। भारत की उदारवादी एवं विश्वबन्धुत्व की नीति का गलत फायदा उठाकर भारत की सुरक्षा में छेद लगाकर अस्थिर करना चाहते हैं, परन्तु उनके मंसूबे न उस समय पूरे हुए, न आज पूरे होंगे और न ही भविष्य में होने की संभावनाएँ हैं, क्योंकि झूठ और दिखावे का सत्य एक दिन सामने आता है और उसमें स्वयं ही घिरकर अंत की ओर जाता नजर आयेगा। साम्प्रदायिक दंगे तथा अन्तरिम सरकार के अनुभवों ने विभाजन विरोधी पटेल को भारत विभाजन का समर्थक बना दिया।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने 6 जनवरी, 1948 को लखनऊ
में एक आमसभा में कहा था-"मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि जो
चार करोड़ मुसलमान इधर पड़े हैं उनके साथ छेड़खानी कभी न
करो, जितनी छेड़खानी आप करेंगे उतना ही ऊपर बोझ पड़ता
रहेगा, क्योंकि उसके लिए हमें ज्यादा पुलिस रखनी पडती है।...
यदि एक ऐसे मुसलमान को जो हिन्दुस्तान के प्रति वफादार है
और जिसने आजादी की लडाई में हमारा साथ दिया और हमारे
साथ मोहब्बत से रहा है- यहाँ से जाना पडेगा तो उससे बडी शर्म
की बात कोई नहीं होगी.....इधर कई लोग कहते हैं कि मुसलमानों

को इधर से निकालो। यह ठीक बात नहीं। इस रास्ते से हमारा काम नहीं होगा। यदि हमें पाकिस्तान के साथ हिसाब करना है तो वह इधर से मुसलमानों के साथ नहीं किया जा सकता।" इससे स्पष्ट है कि सरदार पटेल न तो मुस्लिम विरोधी थे और न ही हिन्दू पक्षधर। वे राष्ट्रवादी थे और जो राष्ट्र में किसी प्रकार का राष्ट्रविरोधी गतिविधि करे या उसका सहयोग करे उसके खिलाफ थे। वे व्यावहारिक एवं यथार्थवादी थे। वास्तविकता यह है कि सरदार पटेल देश की अखण्डता की प्रत्येक क्षण कामना करते थे और प्रजातान्त्रिक रूप से सुदृढ़ भारत का निर्माण चाहते थे। उनकी इस इच्छा में जो भी व्यवधान उत्पन्न करता था, उसे वे देश का शत्रु समझते थे। वे उसका कड़ा विरोध भी करते और दृढ़ता से पेश भी आते थे, अब वह चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम लीग हो या कोई और हो। यह बात स्पष्ट है कि सरदार वल्लभभाई पटेल न तो मुस्लिम या किसी अन्य समुदाय के विरोधी थे और न ही हिन्दू समर्थक थे। वे घटनाओं को यथार्थता के धरातल पर परखते थे और वैसा ही व्यवहार करते थे। उनमें राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम, भक्ति और विश्वास था और उसे वे किसी भी कीमत पर छोड़ने को तैयार नहीं थे।

सरदार पटेल पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर.एस.एस.) के प्रति अपनाये जाने वाले व्यवहार पर भी प्रश्न उठाए गए। इस अध्ययन में सामने आया है कि राष्ट्रीय स्वयं संघ देश की अखण्डता की बात करता था और उसका श्रेष्ठ संगठन था लेकिन उसकी तंगदिली को सरदार कभी पसंद नहीं करते थे क्योंकि उससे देश को हानि होती है। साथ ही धर्म के नाम पर कार्य करना और ऐसा कार्य करना जिससे दो सम्प्रदायों के मध्य सौहार्दपूर्ण वातावरण को बनाने में कठिनाई हो, सरदार पसंद नहीं करते थे। स्वतंत्रता के समय पटेल ने कहा था–'कुछ लोग इस समय गौरक्षा की बात करने लगे हैं।

अभी तो बच्चों, स्त्रियों और बूढ़ों की रक्षा नहीं होती तथा गौ–रक्षा की तो बात ही कहां? जिन मुल्कों में गायों की हत्या करने की मनाही नहीं हैं, वहाँ जैसी हष्ट पुष्ट गायें पायी जाती हैं, वैसी यहाँ नहीं पायी जाती। सचमुच गौ रक्षा करनी हो तो गाय को अच्छी तरह पालना सीखिये।" कई बार पटेल पर दोष लगाया जाता रहा है कि वे हिन्दू राष्ट्रवादी थे और मुसलमानों के प्रति सांप्रदायिक दृष्टिकोण रखते थे। पटेल को हिन्दु–मुस्लिम एकता, प्राणों से बढ़कर प्रिय थी।

सन् 1941 में जब अहमदाबाद में दंगे हुए थे तब दर्द भरे दिल से उन्होंने कहा था, 'आपको एकाएक यह क्या सूझा कि आप एक–दूसरे के गले काटने लगे। मुझे दुःख इस बात का है कि हमारी आबरू चली गयी। अहमदाबाद शहर के नाम पर कलंक लग गया। कैसे मिटाया जाय इसे। इसे मिटाने का एक ही तरीका है कि हम इस बात की कोशिश करें कि दुबारा इस शहर में ऐसा वातावरण न पैदा हो।' लोग गांधीजी से अक्सर यह शिकायत करते थे कि पटेल साम्प्रदायिक हैं परन्तु गांधीजी उन्हें उत्तर देते हुए कहते थे, 'सरदार वल्लभभाई पटेल न तो पहले कभी कौमवादी थे, न आज हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि वे ऐसा व्यवहार कभी नहीं करेंगे जिससे मुसलमानों के साथ अन्याय हो।

महात्मा गांधी की हत्या के उपरान्त राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रति जो रोश उत्पन्न हो गया था और पूरे महाराष्ट्र में, देशभर में जो हिंसा का वातावरण बन रहा था, उसके कारण सरदार के गृहमंत्री काल में ही 4 फरवरी, 1948 को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर प्रतिबंध लगाया था तथा सरकार ने जब यह पाया कि उसके (आर.एस.एस.) अनेक सदस्य हिंसा फैलाने तथा अन्य समाज–विरोधी कार्य करने में लगे हैं तो उन्होंने महसूस किया कि संघ को गैर–वैधानिक संस्था घोषित किया जाए...। उसके बीस हजार सदस्य एकदम गिरफ्तार किये गये।"

उसके प्रमुख गोलवलकर भी गिरफ्तार किये गये तथा यह प्रतिबंध लम्बे समय तक चला और तब तक नहीं उठा लिया गया जब तक कि मार्च 1950 में संघ ने लिखित रूप से देश की शांति स्थापना के साथ किसी भी प्रकार की अराजकता संबंधी कार्य को न करने का वचन दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरदार की दृष्टि लीग व आर.एस.एस. दोनों के प्रति समान थी और जितना जो राष्ट्र विरोधी था, उतना ही सरदार उससे घृणा करते थे।

सरदार पटेल के जीवन पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि वे किसी दल, संप्रदाय, जाति, वर्ग, क्षेत्र, वंश या यो कहें कि संकीर्णता में उन्हें बांधा नहीं जा सकता बल्कि वे देश के सच्चे सरदार थे। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी था, उनकी इच्छाशक्ति मजबूत एवं सुदृढ़, स्पष्टवादी, विविधता में एकता की भावना, सबको साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति और देशभक्ति कूट–कूट कर भरी हुई थी।

पटेल ने अपना सारा जीवन राष्ट्र के नाम कर दिया और उन्होंने अपनी अन्तिम साँसों तक देश के कल्याण के लिए कार्य किए। उनके ऐतिहासिक कार्य व योगदान के लिए वे सदैव याद किये जाते रहेंगे और उनसे प्रेरणा पाकर आने वाली पीढ़ियां प्रेरित व प्रोत्साहित होंगी। ये अद्वितीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी थे। उनके विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं और भविष्य में भी प्रासंगिकता रहेगी।

सन्दर्भ :–

1. बलदेव वंशी, एकता–अखण्डता की प्रतिभूर्ति सरदार पटेल, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.147
2. पृथ्वीनाथ सिंह एवं हरि भगवान, सामाजिक सौहार्द व विकास, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना वैश्विक मैत्री, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2013, पृ.370
3. पूर्वोक्त, बलदेव वंशी, पृ.149

4. जी.एम. नन्दूरकर, दिस वाज सरदार–द कमोमेरेटिव वोल्यूम, वो–1, सरदार वल्लभभाई पटेल स्मारक भवन, अहमदाबाद, 1974, पृ.258
5. उपरोक्त, वो–2, पृ.179
6. डॉ. एन.सी. मेहरोत्रा व डॉ. रंजना कपूर, सरदार वल्लभभाई पटेल–व्यक्ति एवं विचार, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 2012, पृ.202
7. सुशील कपूर, लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल, विद्या विहार, नई दिल्ली, 2013, पृ.90
8. डॉ. प्रभा चौपड़ा (संपादक), भारत का विभाजन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ.22

□□□

RP6 (98)

UGC APPROVED
CARE LISTED JOURNAL

ISSN 2229-3620

GOVT. OF INDIA RNI NO. - UPBIL/2015/62096

शोध संचार बुलेटिन

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY QUARTERLY BILINGUAL
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

Vol. 10 ☆ Issue 37 ☆ January to March 2020

Editor in Chief
Dr. Vinay Kumar Sharma
D. Litt. - Gold Medallist

sancHar
Educational & Research Foundation

44.	राजस्थान में स्थानिक लैंगिक असमानताएँ आर्थिक आधार : एक भौगोलिक विश्लेषण	डॉ0 साधना कोठारी सृष्टिराज सिंह घुण्डावत	176
45.	इतिहास के आइने में सीतापुर	डॉ0 सुरेन्द्र कुमार दीक्षित	183
46.	नागार्जुन के उपन्यासों में मानव संसाधन विकास के तत्व	डॉ0 इन्दिरा कुमारी	188
47.	भारत में ई. अभिशासन : विकास, वर्तमान स्थिति एवं चुनौतियाँ	डॉ0 अमरनाथ पासवान मनीश चन्द्रा	191
48.	सिद्धेश्वरी देवी की सांगीतिक यात्रा	डॉ0 चित्रा चौरसिया	196
49.	मानव के व्यक्तित्त्व–विकास एवं संरक्षण में अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का विशेष योगदान	डॉ0 सिकन्दर लाल	201
50.	उत्तर प्रदेश राज्य में चीनी निगम की समस्याएं	डॉ0 कनीज़ फ़ातिमा	205
51.	भगतसिंह के राजनीतिक चिन्तन में क्रांति : एक समीक्षा	डॉ0 सरस कपूर	209
52.	निर्मितवादी शिक्षण अधिगम–वर्तमान आवश्यकता	डॉ0 किरण पारीक संतोष सोनी	213
53.	महाश्वेता देवी के उपन्यास 'जंगल के दावेदार' और 'उलगुलान' की पृष्ठभूमि	डॉ0 राम शेख पंडित	218
54.	राजभाषा और महात्मा गांधी	प्रिया कुमारी	223
55.	'वृद्ध–विमर्श' के संदर्भ की तलाश और हिन्दी कहानी की दुनिया	शंकर कुमार	226
56.	पहला गिरमिटिया : राजनीतिक चेतना का जीवन्त प्रतिबिम्ब	विश्वनाथ शर्मा	230
57.	शारीरिक पंच कोशों का स्वरूप विवेचन एवं उनकी उपयोगिता	डॉ0 एम0 एल0 यादव	234
58.	1935 अधिनियम के अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन	डॉ0 रीना कुमारी	238
59.	गीत के अप्रतिम हस्ताक्षर शचींद्र भटनागर	स्वाति रस्तोगी डॉ0 महेश 'दिवाकर'	243
60.	लैंगिक समानता का यथार्थ : लिंगानुपात के विशेष संदर्भ में	डॉ0 जनक सिंह मीना	247
61.	दोज़ख एवं त्रिशुल हिंदी उपन्यासों में धर्मनिरपेक्षता	डॉ0 कृष्णा गायकवाड	251
62.	शिक्षकों क़ा उत्तर दायित्व व व्यवसाय परक शिक्षा	डॉ0 म0म0 कडू डॉ0 विजय सिंह यादव	255
63.	सार्त्र और मार्क्सवाद : एक समीक्षात्मक अध्ययन	श्याम रंजन पाण्डेय	259

ISSN - 2229-3620
APPROVED UGC CARE

SHODH SANCHAR BULLETIN
Vol. 10, Issue 37, January-March 2020
Page Nos. 247-250

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

लैंगिक समानता का यथार्थ : लिंगानुपात के विशेष संदर्भ में

❑ डॉ० जनक सिंह मीना*

शोध सारांश

लैंगिक समानता के लिए सामुहिक प्रयासों की आवश्यकता होती है। जब तक सामाजिक सोच का दायरा व्यापक नहीं होगा तथा स्त्रियों के प्रति सकारात्मक बदलाव नहीं होंगे तब तक समानता की बात करना व्यर्थ है। दरअसल भेदभाव, शोषण, उत्पीडन, अत्याचार, अपराधों की विकृत मानसिकता को प्रत्येक क्षेत्र से मिटाना होगा। अपने अंदर के अंहकार एवं वर्चस्ववादी सोच को समूल नष्ट करना होगा। हमें सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक असमानतावादी, रूढ़ीवादी मान्यताओं, प्रथाओं, एवं रीति रिवाजों पर प्रहार करना होगा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए तर्काधारित, व्यापक सोच विकसित करके ही समानता की स्थापना की जा सकती है। आज भी भारत में लिंगानुपात वैश्विक परिप्रेक्ष्य में कम है और चिंतनीय बात तो ये है कि इसमें गिरावट के संकेत मिल रहे हैं। एक ओर हम सतत् विकास लक्ष्यों के तहत लैंगिक समानता के प्रयास कर रहे हैं और दूसरी ओर इसके विभिन्न घटकों में गिरावट आ रही है।

Keywords: भेदभाव, वर्चस्व, पितृसत्ता, उत्पीड़न, सहभागिता, निर्णयन ।

आज वैश्विक स्तर पर लैंगिक समानता एवं लिंगानुपात संतुलन की दिशा में निम्न से शीर्ष स्तर तक प्रयासों का विगुल बज रहा है और इतना ही नहीं सरकारें, शासन–प्रशासन, विभिन्न संस्थाएँ बड़े–बड़े दावे भी करते हैं। इससे संबंधित समंक संकलन (Data Collection) भी होता है और इनका विभिन्न सांख्यिकीय विधियों एवं तकनीकों से विश्लेषण भी होता है परन्तु जब इसकी तह तक जाते हैं तो सैद्धान्तिक और व्यावहारिकी में चौड़ी खाई नजर आती है। जब भी लैंगिकता की बात की जाती है तो इसका साधारण सा अर्थ लगा लिया जाता है यथा स्त्री अथवा पुरुष और इसके साथ ही लैंगिक समानता की आवधारणा संकीर्णता के आंचल में सिमट कर रह जाती है और थर्ड जेंडर (ट्रांसजेंडर) उपेक्षा का शिकार हो जाता है। सामाजिक परिपेक्ष्य में देखते हैं तो लिंग (जेन्डर) को स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग के रूप में ही देखा समझा जाता है और यहीं से लैंगिक भेदभाव, शोषण, उत्पीडन, प्रधानता, वर्चस्ववादी विचारधारा का उद्भव होता है।

वैश्विक परिपेक्ष्य में प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक की स्थिति का आंकलन करते हैं तो महिलाओं की स्थिति प्रत्येक काल एवं देश में समय के साथ परिवर्तित होती रही है। परन्तु अधिकतर महिलाओं की स्थित दोयम दर्जे की ही रही है। जहां एक ओर वैदिक काल में महिलाओं का समाज में आदर और सम्मान था तथा पुरुषों के बराबर माना जाता था, वहीं मध्यकाल में पुरुष प्रधान समाज जिसमें पुरुष सत्ता का बोलबाला रहा, महिलाएँ तो गुलाम या दास मात्र समझी जाती रही। लैंगिक भेदभाव इस प्रकार फैला हुआ था कि न्याय या समानता के बारे में तर्क करना तो दूर की बात थी, सोचना भी किसी अपराध से कम नहीं था। स्त्रियों के साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अर्थात् हर स्तर एवं हर संभव लैंगिक भेदभाव का दंश विद्यमान था।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय परिप्रेक्ष्य तथा राजस्थान की लैंगिकता की वास्तविक स्थिति को लिंगानुपात के संदर्भ में विवेचित करना है, जिससे लैंगिक यथार्थ का बोध हो सके और समस्या के मूल कारणों तक पहुंच कर एक ऐसी नीति, कार्ययोजना तैयार की जा सके जिससे पूरे देश में लैंगिक समानता स्थापित की जा सके।

लिंग और लिंग की भूमिका की सबसे पहले चर्चा 1935 में मार्गरेट मीड (Margaret Mead) ने अपने शोध 'Sex and Temperament in three Primitive Societies' में की है, जिसमें बताया है कि किस प्रकार से एक समाज ऐसा है जहां महिलाएं गुलाम की भूमिका में हैं और दूसरी ओर एक आदिवासी समाज है जहां महिलाएं सत्ता में हैं और पुरूष गुलाम और कमजोर की भूमिका में है।' मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट ने अपनी पुस्तक 'A Vindication of The Rights of Women' में महिला शिक्षा पर

*सहायक प्रोफेसर – राजनीति विज्ञान विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

यल दिया है तथा महिलाओं को पुरुषों के समान ही राजनीतिक सहभागिता एवं शैक्षिक अधिकारों की बात कहीं है अर्थात् इन्होंने लैंगिक समानता की बात 1792 में इस पुस्तक में की थी।[4] इस प्रकार जॉन स्टुअर्टमिल ने 'The Subjection of Women' (1867) में लिंग समानता के संदर्भ में अपने तर्क प्रस्तुत किये। फ्रांसीसी लेखिका सिमोन डी बूवा (Simone de Beauvoir) ने अपनी पुस्तक 'Second Sex' (1949) में महिलाओं के उत्पीड़न का विस्तृत विश्लेषण करते हुए कहा है कि 'औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि बाद में वह औरत बन जाती है।' इसी प्रकार केट मिलेट ने अपनी पुस्तक 'Sexual Politics' (1970) में लैंगिक राजनीति में महिला मुक्ति आन्दोलन, राजनीति, लिंग तथा महिलाओं की कामुकता से संबंधित पहलुओं को केन्द्रित किया है। ऐना आक्ले ने 'Sex, Gender and Society' (1972) में जेंडर सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना है जो स्त्रीत्व व पुरुषत्व के गुणों को प्रकट करने के सामाजिक नियम व कानूनों का निर्धारण करता है। मिशेल फूको ने अपनी पुस्तक 'The History of Sexuality' (1980) में बताया है कि शरीर एक ऑब्जेक्ट है जिसे समाज राजनीति व सत्ता के अनुसार ढालता है और आगे के लिए तैयार करता है जैसे कि पुरुष सदैव अपने लिए अधिक 'ज्यादा' की चाह रखता है, वहीं स्त्री 'थोड़े में ही' स्वयं को संतुष्ट रखती हैं क्योंकि उसकी सामाजिक दशाएं एक सीमित दायरे तक ही सोचने की स्वीकृति प्रदान करती हैं। भारतीय संदर्भ में बात की जाये तो उनमें प्रमुख हैं– कमला भसीन, निवेदिता मेनन, उमाचक्रवती, शर्मिला रेगे, मैत्रायी कृष्णराज आदि।

लिंगानुपात और लैंगिक समानता

वैश्विक स्तर पर लिंगानुपात पर दृष्टि डालते हैं तो हम देखते हैं कि प्रति एक हजार पुरुषों पर (2011 के अनुसार) रूस में 1167, जापान – 1055, ब्राजील,– 1042, संयुक्त राज्य अमेरिका – 1025, इंडोनेशिया – 988, नाइजीरिया – 987, भारत – 943, चीन में 926 महिलाएँ हैं। विश्व के औसतन लिंगानुपात पर नजर डाले तो पता चलता है कि वर्ष 2001 में 986 था जो 2011 में घटकर 984 हो गया था। वहीं भारत में वर्ष 2001 में 933 था, जो 2011 में बढ़कर 943 हो गया था परन्तु यूनाइटेड नेशंस की 2019 की रिपोर्ट में यह आंकड़ा घटकर 930 हो गया जो कि निश्चित रूप से चिंता का विषय है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक स्वस्थ लिंगानुपात प्रति हजार पुरुषों पर 952 महिलाएं होना चाहिए।

भारत में लैंगिक समानता की अवधारणा अभी दूर की बात है क्योंकि भारतीय समाज की पारिस्थितिकी एवं निष्ठा अभी पुरुष प्रधान की उधेड़ बुन तक ही सिमटी हुई है। गर्भ धारण से पूर्व की मानसिकता से लेकर स्वर्ग सिधारने तक की यात्रा में पुरुष वर्चस्व एवं रीति रिवाज, प्रथा, रूढिवादिता का समावेशन इस प्रकार समाया हुआ है कि उसके खात्मे के लिए अभी सतत् प्रयास एवं पहल करनी होंगी। ऐसा नहीं है कि भारत में महिलाओं की स्थिति में अन्तर नहीं आया है अपितु समय के साथ सकारात्मक बदलाव आ रहे हैं परन्तु अभी इस दिशा में कार्य करने की अधिक आवश्यकता है। हमारे देश में भी महिला सशक्तिकरण के प्रयास वैश्विक प्रयासों के अनुसरण में हो रहे हैं। प्रत्येक स्तर एवं पहलू पर लैंगिक समानता के प्रयास हो रहे हैं, चाहे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, खेलकूद, अध्ययन–अध्यापन, तकनीकी, शोध का क्षेत्र ही क्यों ना हो। अब हमें आवश्यकता है सामाजिक सोच को बदलने की, सामाजिक दायरे को बढ़ाने की, समाज और संस्कृति में तालमेल बनाने की और संतुलित सामाजिक संरचना को बनाये रखने की। भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार केरल में सर्वाधिक 1084 तथा हरियाणा में न्यूनतम 879 प्रति एक हजार पुरुषों पर महिलाएँ थी और दुनिया के 201 देशों में भारत 191 वें स्थान पर था जो हमारे लैंगिक भेदभाव, शोषण, अपराध, उत्पीड़न की कहानी बया करता है। आज महिलाएं शिकार हैं– कन्या भ्रूण हत्या, यौन उत्पीडन, तस्करी, क्रय–विक्रय की वस्तु के रूप में, अनैतिक देह व्यापार, अनचाहा एवं असुरक्षित गर्भपात, टोना–टोटके, सती प्रथा, दहेज उत्पीडन, घरेलू, हिंसा, मौखिक, वैचारिक, शारीरिक, आर्थिक, भावनात्मक, मानसिक, उत्पीडन एवं शोषण, बलात्कार, गैंगरेप, ऐसिड अटैक, ब्लैकमेलिंग अपहरण, वेश्यावृत्ति, साइबर क्राइम, धार्मिक, सामाजिक, हथकण्डे जैसे खाप पंचायत आदि।

भारतीय समाज में अधिकांश धर्म व्यवस्थाएं पितृसत्तात्मक हैं तथा दैवीय शक्ति के रूप में समाज में प्रतिष्ठित एवं मान्य हैं। विभिन्न समुदायों में प्रचलित पंथनियमावलियों को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। पंथिक नियमावलियों की 'पवित्रता' के पक्ष में तर्क दिए जाते रहें हैं, उनके मूल में कदाचित लैंगिक न्याय को अवरूद्ध करने की रणनीति है।[5] भारत में उपनिषद् काल से ही गार्गी, मैत्रयी जैसे स्वतंत्र चेता स्त्रियों का परिचय मिलता है। वृहदारण्यक उपनिषद् में गार्गी याज्ञवल्क्य से सवाल करती है, तर्क करती है तो याज्ञवल्क्य की चेतावनी पर भी कि "गार्गी, मातिप्राक्षीर्मा तेमूर्द्धा न्यपतत्.... (री गार्गी मुझसे सवाल पूछेगी, तो तेरा सिर नीचे गिर जायेगा।" गजब है कि स्त्री सवाल उठा नहीं सकती।[6] इससे स्पष्ट हो रहा है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों को न तो सवाल करने का और न ही तर्क–वितर्क करने का अधिकार था, तो लैंगिक समानता की बात करना तो दूर की बात है। स्वामी विवेकानन्द ने स्त्री की पूर्णता उसकी पूर्ण स्वतन्त्रता में माना। उनकी राय में स्त्री की समस्याओं का समाधानढूंढ निकालने की क्षमता स्वयं स्त्रियों में निहित है। पुरुषों को उसमें हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं हैं।[7] स्त्री बचपन में माता–पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और बुढ़ापे में सन्तान के अधीन होती है। ऐसी संकुचित सामाजिक मान्यताओं एवं धारणाओं ने लैंगिक समानता की अवधारणा की स्थापना में अवरोधक का कार्य किया

है। कभी प्रथाओं, रीति–रिवाजों, धार्मिक आस्थाओं, मान्यताओं आदि की आढ़ में स्त्रियों को उनके हक एवं अधिकारों से वंचित रखा है और पति परमेश्वर जैसी पुरूष प्रधान वाली मान्याताओं का प्रचार–प्रचार किया गया है।

राजस्थान में लिंगानुपात और लैंगिक समानता

2011 की जनगणना के आधार पर भारत के 5 बेहतर लिंगानुपात वाले राज्यों यथा केरल 1084, तमिलनाडु 996, आंध्र प्रदेश 993, छत्तीसगढ़ 991 तथा मेघालय 989 हैं जबकि न्यूनतम लिंगानुपात वाले पाँच राज्यों में क्रमशः हरियाणा 879, जम्मू एवं कश्मीर 889 (अब केन्द्र शासित प्रदेश), सिक्किम – 890, पंजाब 895, उत्तर प्रदेश 912 हैं जबकि राजस्थान में 928 के साथ निचले क्रम से आठवें पायदान पर है। राजस्थान एक ऐसा राज्य है जो क्षेत्रफल की दृष्टि से तो देश में प्रथम स्थान पर है परन्तु यहां की पारिस्थितिकी एवं विविधताओं के कारण अन्य राज्यों से भिन्न है। यहां जातिवाद, क्षेत्रवाद, मरूस्थलीय प्रभाव, देशी रियासतों के अवशेष आदिने न केवल लैंगिक भेदभाव को बढ़ावा दिया अपितु अनेक किस्से एवं कहानियां इसकी गवाही भी देते हैं। राजस्थान में पांच बेहतर लिंगानुपात वाले जिलो में क्रमशः डूंगरपुर 990, राजसमन्द 988, पाली 987, बांसवाड़ा 979, चित्तौडगढ़ 970 हैं जबकि अन्तिम पायदान वाले पांच जिलों में क्रमशः धौलपुर 845, जैसलमेर 849, करौली 858, भरतपुर 877 एवं गंगानगर 887 हैं।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में साक्षरता 66.11 प्रतिशत थी जिसमें 79.19 प्रतिशत पुरूष एवं 52.12 प्रतिशत महिलाएं साक्षर थी। राजस्थान के 33 जिलों में से 18 जिले ऐसे हैं जहां महिला साक्षरता 50 प्रतिशत से भी कम है, केवल 15 जिले ऐसे हैं जहां महिला साक्षरता 50 प्रतिशत से अधिक है। राजस्थान के जालौर जिले में 38.47 प्रतिशत, सिरोही में 39.73 प्रतिशत, जैसलमेर 39.71 प्रतिशत, बाडमेर 40.63 प्रतिशत, बांसवाडा 43.06 प्रतिशत, टोंक 45.45 प्रतिशत, डूंगरपुर 46.16 प्रतिशत, चित्तौड़गढ़ 46.53 प्रतिशत, झालावाड़ 46.53 प्रतिशत, बूंदी 46.55 प्रतिशत, भीलवाड़ा 47.21 प्रतिशत, सवाई माधोपुर 47.51 प्रतिशत, नागौर 47.82 प्रतिशत, राजसमन्द 47.95 प्रतिशत, पाली 48.01 प्रतिशत, उदयपुर 48.45 तथा करौली 48.61 प्रतिशत महिला साक्षरता है।

उपरोक्त आंकड़े तो केवल लिंगानुपात एवं साक्षरता को दर्शाने वाले हैं परन्तु यथार्थता तो इससे भी भयावह करने वाली है। बच्चों में लैंगिक भेदभाव इस कदर है कि लड़का और लड़की पैदा करने वाली महिलाओं के प्रति व्यवहार उनके साथ वर्ताव, उनके खान–पान, देखभाल में भी भेदभाव आम बात है। उनके पालन पोषण शिक्षा व्यवस्था में भी भेदभाव खुले आम देखा जा सकता है। जहां लड़कों के लिए शिक्षा का बेहतर से बेहतर प्रबंधन एवं अवसर उपलब्ध करवाने के प्रयास किए जाते हैं, वहीं लड़कियों को सीमित एवं सामान्य शिक्षा का प्रबंधन उनके माँ–बाप द्वारा किया जाता है। लड़कों को विज्ञान, वाणिज्य, तकनीकी, विधि की शिक्षा के लिए हर संभव प्रयास किए जाते हैं, जबकि महिलाओं को इन क्षेत्रों के लिए अत्यंत कम अवसर दिये जाते हैं। उनकी अपनी पंसद की उच्च शिक्षा भी प्रदान नहीं होती और न ही मनपंसद व्यवसाय की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। उनके व्यक्तित्व विकास में निर्णयों को थोपा जाता रहा है, इसलिए वे अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं कर पा रही हैं। दूसरी ओर खाप पंचायतों में पंच पटेल केवल पुरूष ही होते हैं और जब निर्णय लिए जाते हैं, यहां तक कि महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर भी बिना उनकी राय लिए ही निर्णय थोप दिये जाते हैं।

भारतीय संविधान में प्रदत्त अधिकारों में लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव वर्जित है। महिला उत्पीड़न, शोषण, अपराधों की रोकथाम के लिए हालांकि कानूनों की भरमार है परन्तु समानता तो दूर की बात अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है। जब विवाहित स्त्री पर पुरूष से सम्बन्ध जोड़ती है तो समाज उसे चरित्रहीन और कुलटा की उपाधि देता है। नारी चाहे कितनी ही सख्त मिजाजवाली, अहंनिष्ठा, असम्मव, स्वार्थी, झगडालू हो मगर सेक्स के क्षेत्र में पति के प्रति बफादारी हो तो उसे श्रेष्ठ महिला मान लिया जाता है। इसके विपरीत वह कितनी भी अच्छी, सीधी–साधी शान्त, त्यागशील हो परन्तु उस पर पति के अलावा किसी गैर पुरूष से अवैध सम्बन्ध का शक हो तो उसे बुरी औरत मान लिया जाता है।"

भारतीय संसद में महिला आरक्षण का मुद्दा लम्बे समय से गूंजता रहा है परन्तु कोई भी राजनीतिक दल इसके पक्ष में नहीं है। पुरूष वर्चस्ववादी समाज और संसद में वे महिलाओं की सहभागिता नहीं चाहते क्योंकि उनके स्वयं का अस्तित्व खतरे में नजर आता है। राज्यों में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण कर दिया है और कुछ राज्योंमें अपने स्तर पर 50 प्रतिशत महिला आक्षरण अवश्य कर दिया है परन्तु आज भी उसकी वास्तविक बागडोर पुरूषों के हाथों में है। महिलाएं तो नाम मात्र की जनप्रतिनिधि हैं, निर्णय तो पुरूष ही करते हैं। भारत में आज तक केवल इन्दिरा गांधी ही प्रधानमंत्री के पद पर आसीन होने वाली महिला क्यों रह पायी है। राजस्थान में भी वसुन्धराराजे ही एक मात्र महिला हैं जो मुख्यमंत्री के पद पर रह चुकी हैं। देश की संसद हो या राज्यों के विधानमण्डल हो, सभी पर महिलाओं की भागीदारी अत्यंत कम है। "गंदी राजनीति ने स्त्री की अस्मिता को सूली पर टांग रखा है। स्त्री हमारे लिए या तो भोग–वस्तु है या क्रय – विक्रय की चीज या राजनीति की शतरंज का मोहरा। उसकी मॉं, बेटी, बहन, पत्नी, प्रेमिका आदि की परंपरागत भूमिका तो हमें स्वीकार है, किन्तु इस घेरे से बाहर कोई भूमिका नहीं, इसलिए यदि कोई स्त्री परम्परागत भूमिका के घेरे से बाहर निकल कर कोई उपलब्धि हासिल करती है तो पुरूष–समाज को अवचेतन में ही सही, तकलीफ होती है।"

सार रूप में कहा जा सकता है कि लैंगिक समानता के मार्ग में अभी अनेक अवरोधक विद्यमान हैं जिनमें सामाजिक दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हमें नैतिकता के सभी आयामों के एक पक्षीय दृष्टिकोण से नकारते हुए बहु पक्षीय आयामों पर चिन्तन मंथन करने की आवश्यकता है। समाज में व्याप्त संकीर्ण विचारधारा को व्यापक बनाना होगा और समाज की पारिस्थितिकी को खुला निनंत्रण देना होगा। इसी के बल पर लैंगिक भेदभाव, शोषण, उत्पीडन, अत्याचार रुक पायेंगे। लैंगिक भेदभाव के हर पहलू को समानता के तराजू से तौलकर देखना होगा, तभी संविधान प्रदत्त अधिकारों का वास्तविक रूप में क्रियान्वयन हो सकेगा और लैंगिक समानता स्थापित की जा सकेगी।

सन्दर्भ :–

1. मार्गरेट मीड, सेक्स एण्ड टेम्परामेंट इन थ्री प्रिमेटिव सोसायटीज, पेरेनियल हारपर कोलिंस पब्लिशर्स, न्यूयोर्क, 2001
2. मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट, ए विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन, पीटर एड्रेज, थोमस एण्ड एन्ड्रूज, यू.के., 1792
3. प्रो. कमला प्रसाद (सं.), स्त्रीः मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2014, पृ.सं. 246
4. डॉ. के.एम. मालती, स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृ. 9
5. उपर्युक्त, पृ. 154–155
6. डॉ. सुधा बालकृष्णन, नारी : अस्तित्व की पहचान, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019 पृ. 18
7. राज किशोर (सं.), स्त्री, परम्परा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ. 36

□□□

ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ A Social Science Research Journal

वर्ष 25 अंक 99 एवं 100 ▪ संयुक्तांक ▪ अक्टूबर-2019 - मार्च-2020

महात्मा गाँधी वैचारिक प्रासंगिकता

सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

ही मार्च के दौरान जब कुछ
होना चाहिए कि यदि आप

भारत में मुन्नाभाई से लेकर
तक तमाम तरह की फिल्में
ी हैं, जिसमें गांधी को एक
र्ड एटनबर्ग की गांधी पर
किरदार अमर है. वजह सिर्फ
ी की आज तक नहीं मान
फेंका था उन्होंने ना सिर्फ

ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 25, अंक 99–100, अक्टुबर, 2019–मार्च, 2020 पृ. 7–17

महात्मा गाँधी के दर्शन में सत्य, अहिंसा और नैतिकता

डॉ. जनकसिंह मीना

गांधीजी का दर्शन गुंथा हुआ है और उसमें से एक नियम को तोड़ते ही सारी जंजीर टूटती सी नजर आती है। यह नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति कुछ नियमों का पालन करे और कुछ का ना करे। इसका अर्थ है कि एक सिद्धान्त या तत्व को बाहर निकालते ही गांधी चिन्तन की माला टूटने लगती है। अतः मानव को अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचाने में गांधीजी के जिन सिद्धान्तों को अपनाना होता है वे ही गांधीजी के चिन्तन के नैतिक आधार हैं। गांधीजी का चिन्तन समग्र है जिसे बांटना न सम्भव है, न ही उचित है। अहिंसा गांधीवादी चिंतन का मूल सिद्धांत है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा वह साधन है जिसके द्वारा सत्य की साधना की जा सकती है। गांधीजी ने स्पष्ट किया कि सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा अनिवार्य साधन है, अतः अहिंसा स्वयं में साध्य नहीं होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके बिना सत्य की साधना ही असम्भव है। गांधीजी के अनुसार अहिंसा का सार शाश्वत प्रेम में समाविष्ट है। सच्चा अहिंसक दृष्टिकोण वह है, जो व्यक्ति को अपने विरोधियों और शत्रुओं से भी प्रेम करने के लिए प्रेरित करें। गांधीजी के अनुसार सच्ची अहिंसा वह है जो निःस्वार्थ और निरपेक्ष हो। इस शोध में तथ्यों एवं समंकों को आधार बनाकर प्रमुख रूप से द्वितीयक आंकडों के आधार पर विषय सामग्री का एकत्रण कर विश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा है। इस शोध पत्र में गाँधी दर्शन में अहिंसा की भूमिका एवं इसके संबंधों को दृष्टिपटल पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। इसमें यह पता लगाने का प्रयास किया जा रहा है कि क्या अहिंसा गाँधी दर्शन का मूलाधार है ?

क्या अहिंसा सभी समस्याओं का समाधान करती है ? क्या अहिंसा के बल पर पूरी दुनिया को जीता जा सकता है ? क्या अहिंसा का राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रभाव होता है ? आदि अनेक प्रश्नों के उत्तर तलाश ने का प्रयास तथ्य एवं तर्क के आधार पर किया जायेगा।

बीज शब्द–दर्शन, अहिंसा, नैतिकता, सत्य, निरपेक्ष

विश्व शांति मानवीय जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।. शांति के आधार पर ही एक व्यवस्थित समाज व राष्ट्र की स्थापना और मानव जीवन की उन्नति सम्भव है। आज की परिस्थितियों में सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भौतिकता का चक्र बिगड़ता जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व म महाशक्ति बनने की होड़ में मानवता को त्याग कर हिंसक हथियारों के भण्डार भरे जा रहे हैं, ऐसी स्थिति में गांधीजी के दर्शन का अहिंसा का सिद्धांत और भी महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हो जाता है। वर्तमान समाज और देश के समक्ष विश्वशांति की दिशा में गांधीवादी चिन्तन का अहिंसावादी पहलू एक आधार का काम करता है।

समस्त मनुष्यों एवं प्राणियों के प्रति अहिंसा एवं मैत्रीभाव की वैश्विक दृष्टि की शिक्षा का उल्लेख उपनिषद्, गीता, पुराणों व योगसूत्रों में निहित है। अहिंसा किसी धर्म, जाति या देश की अहिंसा नहीं है बल्कि यह समस्त मानव जाति की विरासत हैं। अहिंसा एक विश्वव्यापी कानून है जो हर स्थिति में अनुकूल है। अहिंसा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना पुराना मानव सभ्यता का इतिहास है। आदिकाल से ही मनुष्य ने शाश्वत व समकालीन मूल्यों को अपनी सभ्यता व संस्कृति में समाविष्ट किया। इनमें से कुछ विशिष्ट मूल्य, जिन्होंने मानव जाति के अस्तित्व को न केवल बनाए रखा बल्कि संस्कृति व सभ्यता के विकास में भी उल्लेखनीय योगदान किया है। अहिंसा इन्हीं शाश्वत मूल्यों की श्रृंखला में प्रथम आवश्यक कड़ी है। मानव जाति के साथ अहिंसा प्रारम्भ से ही हमदर्द के रूप में साथ रही है। अहिंसा एक शक्ति है, एक पराक्रम है, एक शौर्य है। अहिंसा आन्तरिक ऊर्जा का विकास है। अहिंसा की संस्कृति ने विकास के विभिन्न काल में अहिंसा के विभिन्न शिखर छुए हैं। अहिंसा का समुचित विस्तार होने के लिए अभी बहुत प्रयत्नों की आवश्यकता है ।

भारतीय दर्शन में अहिंसा शब्द सर्वप्रथम छान्दोग्य उपनिषद में पाँच नैतिक सद्गुणों से मिलता है जिसकी पुनरावृति सभी भारतीय धर्मग्रन्थों में हुई है। प्रसस्तपद के वर्गीकरण में जातीय कर्तव्यों के रूप में अहिंसा का वर्णन हुआ है। जैन धर्म में अहिंसा को एक व्रत के रूप में जबकि बौद्ध धर्म में इसे एक आधारभूत सिद्धान्त माना गया है। अहिंसा का वास्तव में यह अर्थ है कि आप किसी का मन न दुखाएँ, जो अपने को आपका शत्रु मानता

है, उसके बारे में भी कोई अनुदार विचार मन में न रखें। क्योंकि जो व्यक्ति अहिंसा का सिद्धांत मानता है, उसके लिए तो किसी को अपना शत्रु मानने की गुंजाइश ही नहीं है–वह शत्रु का अस्तित्व मानता ही नहीं है। किन्तु ऐसे लोग हो सकते हैं जो उसे अपना शत्रु माने, इसमें तो उसका कोई वश नहीं है। सत्य और अहिंसा ही हमारे ध्येय हैं। 'अहिंसा परमो धर्म:' इससे भारी शोध दुनिया में दूसरा नहीं है। जब तक हम संसार के व्यवहारों में रहते हैं, जब तक हमारी आत्मा का व्यवहार शरीर के साथ रहता है, तब तक कुछ न कुछ हिंसा हमसे होती ही रहती है, पर जिस हिंसा को हम छोड़ सकते हैं, उसे छोड़ देनी चाहिए। जिस धर्म में जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिए कि उस धर्म में उतना ही ज्यादा सत्य है। गांधीजी के अनुसार–अहिंसा का अर्थ यदि प्रेम होता है तो फिर वहां शोषण और उत्पीड़न का स्थान नहीं होगा।[1] प्रेम और परिग्रह, प्रेम और उत्पीडन, प्रेम और विषमता तथा प्रेम और शोषण साथ–साथ नहीं चल सकते।[2]

अहिंसा वह है जिसमें किसी भी प्राणी का शारीरिक व मानसिक रूप से अहित न सोचना अर्थात् किसी भी प्राणी के साथ घात न करना व किसी प्रकार से अपशब्द न बोलना। सामान्य रूप से अहिंसा के दो प्रकार माने जाते हैं – (1) निषेधात्मक अहिंसा, और (2) विधेयात्मक अहिंसा।

निषेध का अर्थ होता है – न होने देना या किसी चीज को रोकना। अतः निषेधात्मक अहिंसा का अर्थ होता है कि किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न होने देना। वास्तव में अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है जो आज हमारी दृष्टि के सामने है। किसी को न मारना, इतना तो है ही, कुविचार मात्र हिंसा है, जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है, उस पर कब्जा करना भी हिंसा है, उतावली हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है। अहिंसा का आचरण करने के लिए हिंसा से बचना चाहिए। अहिंसा केवल कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं को न करने में ही नहीं होती है, अपितु कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं को करने में भी होती है, जैसे दया, करूणा, मैत्री, सहायता, सेवा, क्षमा करना आदि। यही सब क्रिया ही विधेयात्मक अहिंसा कहलाती है।

अहिंसा एक महाव्रत है। वह तलवार की धार पर चलने से अधिक कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आने पालन करना असंभव ही माना जाएगा। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ है–त्याग और ज्ञान। अहिंसा कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह हृदय का सर्वोत्तम गुण है और उसे प्रयत्नपूर्वक पा लेने

पर ऐसा मालूम होता है कि वह स्वाभाविक गुण है, सचमुच वह वैसा ही है और प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति को आश्चर्य होता है कि उसे पाने में उसे किसी प्रकार का कष्ट क्यों उठाना पड़ा। हमारे भीतर का पशु कहता है कि घूसे के बदले घूसे से बढ़कर स्वाभाविक और क्या है ? और हमारे अंदर बैठा हुआ मनुष्य कहता है कि घूसा मारने वाले को क्षमा करने से बढ़कर अधिक स्वाभाविकता और अधिक मानवता और क्या है ?

महात्मा गांधी का उद्देश्य किसी नए दर्शन का विकास करना नहीं था अपितु वे सभी महत्वपूर्ण बातों पर विचार करते, चिंतन मनन करते और उससे जुडे हुए प्रत्येक पक्ष की पारिस्थितिकी को समझने का प्रयास करते थे। वे केवल विषय के सैद्धांतिक पक्ष को नहीं देखते थे बल्कि उसके व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रख कर बात करते थे। महात्मा गांधी के सभी पहलुओं का आधार एक ही है, वह है – नैतिकता। जिस मनुष्य में अहिंसा, विनय, शांति, दया, दूसरों की राय के प्रति आदर, काम को समझने की शक्ति, परिणामदर्शिता, त्रिकालबाधित सत्य के प्रति दृढ़ भक्ति.भाव, कार्य करने की निश्चयात्मक बुद्धि आदि गुण होते हैं, उन्हें महापुरुष कहा जाता है और ऐसे ही महापुरुष थे–महात्मा गांधी।

महात्मा गांधी का मानना था कि जिससे हम अच्छे विचारों में प्रवृत्त हो सकते हैं, वह हमारी नैतिकता का परिणाम माना जाएगा। नीति मार्ग हमें यह बतलाती है कि दुनिया कैसी होनी चाहिए। यदि हमें पूर्ण बनना है तो हमें आज से हर तरह के कष्ट उठाकर नीति का पालन करना चाहिए और उन्होंने आजीवन यही किया। महात्मा गांधी ने अपनी नैतिकता के प्रकाश से सिर्फ भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व को आलोकित किया है। राष्ट्रीय आंदोलन का यह महानायक देश की आजादी के लिए जीवन का बलिदान देने के लिए तैयार था किन्तु उसकी आजादी का अर्थ सिर्फ अंग्रेजों से मुक्ति नहीं थी। वे हिंसा, रक्तपात, असत्य, धोखेबाजी की कीमत पर आजादी नहीं चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि नैतिकता विहीन आजादी का कोई अर्थ नहीं। उन्होंने सिर्फ हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता ही नहीं दिलाई, बल्कि हमें एक वातावरण भी दिया जिसमें हम अपने नैतिक गुणों का विकास कर मनुष्यत्व को पा सकें।

अहिंसा की अवधारणा

अहिंसा मानव के आत्मसम्मान व स्वाभिमान की रक्षा करती है, यह उच्च कोटि की एक सक्रिय शक्ति है। अहिंसा के मार्ग का पहला कदम है कि हम अपने जीवन में सत्यता, विनम्रता, भाई–चारा, मानवता, सहिष्णुता व दयालुता का व्यवहार करें। हिंसा कभी वैध विधि नहीं हो सकती है जबकि अहिंसा वैध विधि है। यहां पर हमारा विधि से तात्पर्य मानव

निर्मित विधि से न होकर प्रकृति द्वारा मानव के लिए निर्मित विधि से है। यदि किसी मानव की ईश्वर में आस्था न हो तो उसकी अहिंसा में भी आस्था नहीं हो सकती है। अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है क्योंकि कायर से अहिंसा के धर्म का पालन करने के लिए कहना बेकार है।

बौद्ध धर्म, दर्शन में भी अहिंसा को प्राण माना गया है। गौतम बुद्ध के अनुसार मैत्री और करूणा अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और सभी जीवों के प्रति दया का भाव ही अहिंसा है। उन्होंने अहिंसात्मक कर्म को सम्यक कर्म बताया है तथा अहिंसा के मार्ग में बाधक शस्त्र, प्राणी, मांस, मदिरा और विष के व्यापार को त्याज्य कहा है। अहिंसा की अवधारणा सत्य व ईश्वर की अवधारणा पर आधारित है जो मानव जंगत का सत्य व ईश्वर से साक्षात्कार करवाती है। अहिंसा की नीति सत्य पालन पर आधारित है इसलिए अहिंसा की अवधारणा भी स्वयं के अन्दर परमार्थ का भाव लिए हुए है। जिसके कारण यह सामाजिक सेवा का एक उत्तम माध्यम है। अतः हम बता सकते हैं कि अहिंसा की अवधारणा बहुत विस्तृत है जिसमें मानवता, प्रेम, त्याग, सामाजिक हित जैसे मूल्य स्वतः ही आत्मसात हो जाते हैं।

मनुष्य जति के पास जो सबसे बड़ी शक्ति है वह अहिंसा ही है। बुद्ध की जैसी अहिंसा का परिणाम तो चिरकाल कायम रहता है, इतना ही नहीं बल्कि समय के साथ–साथ बढ़ता जाता है। अहिंसा मात्र मनुष्य जाति का ही हित करने वाली हो यानी मनुष्यों के हित या लाभ के लिए अन्य प्राणियों का घात या किसी भी प्रकार की हानि को वह स्वीकार करे तो यह अहिंसा गांधीजी के मतानुसार अहिंसा कहलाने का दावा नहीं कर सकती है। उन्होंनें कहा है कि आदमी यदि अपने में वह शक्ति पैदा कर ले कि वह शेर–भालु आदि हिंसक पशुओं से भी प्रेम कर सके और बिना उनकी हत्या किए भी काम चला सके तो अति उत्तम है। जो अहिंसा का पालन करता है वह प्राणी मात्र के प्रति सद्भावना रखता है। वह उन प्राणियों को भी गले लगाता है जो हिंसक हैं, विषैले हैं। पेड़–पौधों को उखाड़ना भी बुरा है, क्योंकि घास–पात में भी जीव होते हैं। गाँधीजी स्वयं को एक व्यवहारिक आदर्शवादी कहते थे इसलिए वे अहिंसा के अतिवाद से अनावश्यक रूप से ग्रसित नहीं थे। वे जीव–जीव के स्तरों में बुद्धिपूर्वक भेद करते हुए अपनी दृष्टि हमेशा अहिंसा के उत्तरोत्तर विकास की ओर रखते थे। इसमें आदर्श और व्यवहार तथा भावना और बुद्धि का आदर्श समन्वय है।

महात्मा गाँधी के अनुसार अहिंसा की पाँच विशेषताऐं है [3]

1. अहिंसा बिना किसी अपवाद के हिंसा से श्रेष्ठ है; यानि अहिंसक व्यक्ति की शक्ति सम्पन्नता उसके हिंसक व्यवहार की तुलना में अधिक होती है।

2. अन्ततः अहिंसा में विजय सुनिश्चित है यदि विजय जैसे शब्दका अहिंसा के लिए प्रयोग किया जाए। वास्तव में जहाँ पराजय का कोई स्थान ही न हो, वहाँ विजय का कोई अर्थ ही नहीं होता।

3. अहिंसा में मानव–सुलभ सम्पूर्ण आत्मशुद्धि अन्तर्निहित होती है।

4. अहिंसा में हार का प्रश्न कभी उत्पन्न नहीं होता। हिंसा की परिणति निश्चित पराजय है।

5. अहिंसा की शक्ति अहिंसक व्यक्ति की हिंसा करने की योग्यता उसकी इच्छा के अनुपात पर निर्भर करती है।

अहिंसा के प्रकारः– गाँधी के अनुसार अहिंसा सर्वोच्च नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति की प्रतीक है। अहिंसा के तीन रूप हो सकते हैं – जाग्रत अहिंसा, औचित्य अहिंसा, तथा भीरूओं की अहिंसा। जाग्रत अहिंसा वह है जो व्यक्ति में अर्न्तआत्मा की पुकार पर स्वाभाविक रूप से जन्म लेती है। इसे व्यक्ति अपने आन्तरिक विचारों की उत्कृष्टता अथवा नैतिकता के कारण स्वीकार करता है। इस प्रकार की अहिंसा में असंभव को भी संभव में बदल लेने की अपार शक्ति निहित होती है। औचित्य अहिंसा वह है जो जीवन के किसी क्षेत्र में विशेष आवश्यकता पड़ने पर औचित्यानुसार एक नीति के रूप में अपनाई जाऐ। यद्यपि यह अहिंसा दुर्बल व्यक्तियों की है, पर यदि उसका पालन ईमानदारी और दृढता से किया जाए तो यह काफी शक्तिशाली और लाभदायक सिद्ध हो सकती है। भीरूओं की अहिंसा डरपोक और कायरों की अहिंसा है, निष्क्रिय अहिंसा है। कायरता और अहिंसा, पानी तथा आग की भाँति एक साथ नहीं रह सकते।[4] गाँधी ने माना है कि हिंसा केवल शरीर से ही नहीं मन से भी होती है।"अहिंसा" पुस्तक में लिखा है– "जगत में सारे प्राणी एक हैं, जहाँ तक जीव का संबंध है उनमें से किसी को भी हानि पहुँचाना हिंसा है। किसी के प्रति हानि पहुँचाने वाली बात सोचना भी हिंसा है।"[5]

अंहिसा का वैदिक अर्थ है किसी प्राणी की हत्या ना करना एवं किसी का दिल न दुखाना। यही मनुष्य का सर्वोत्तम धर्म कहा है। पुनः व्यास मुनीजी ने उपदेश दिए :

1– अहिंसा परमोधर्म : –अहिंसा सबसे उत्तम धर्म है। अर्थात मनुष्य द्वारा अंहिसा का पालन करना सर्वोत्तपुण्यवान

कर्तव्य–कर्म है। अंहिसा धर्म के अभाव में ही सर्वत्र अहिंसा का वातावरण उत्पन्न होता है फिर जीने का सुख कहां ?

2– अंहिसा परमग दमः –मन की वृत्तियों का निग्रह करना दम कहलाता है। अतः अंहिसा

सर्वोत्तम दम है। इससे इंद्रिया निरुद्ध होकर कभी भी अहिंसा आदि पाप कर्मों में प्रवृत्त नहीं होती।

3– **अंहिसा परमम दानम**–अंहिसा सबसे उत्तम दान है अर्थात जो अंहिसा व्रत का पालन करता है, वह विश्व में सबसे उत्तमदानी है।

4– **अंहिसा परमम तपः**–अंहिसा सबसे उत्तम तप है अर्थात अंहिसा का पालन करके मनुष्य विश्व में सबसे उत्तम तपस्वी का पद प्राप्त करता है।

5– **अंहिसा परमम यज्ञः** –अंहिसा सबसे उत्तम यज्ञ है। वेदों में वैसे भी अध्वर शब्द का प्रयोग करके उपदेश दिया है कि हिंसा रहित यज्ञ को ही ईश्वर स्वीकार करता है।

6– **अंहिसा परमम फलम**–अंहिसा सबसे उत्तम फल है। अंहिसा सिद्ध होने से परमेश्वर की प्राप्ति सुलभ है, इसलिए अंहिसा परम फल है।

7– **अहिसा परमम मित्रम** –अंहिसा सबसे उत्तम मित्र है, क्योंकि अंहिसा सिद्ध होने से उस व्यक्ति से सभी अंहिसा प्राणी और अन्य प्राणी अर्थात सभी प्राणी वैर त्याग देते हैं और मित्र बन जाते हैं, इसलिए अंहिसा मित्र है और जो मनुष्य क्रोध करते हैं, उनको शत्रु बनाने की आवश्यक्ता नहीं, उनके अंनेक शत्रु स्वयं ही बन जाते हैं और जीवन में भय एवं दुखों का ही समावेश हो जाता है।

8– **अंहिसा परमम सुखम** – अंहिसा सबसे उत्तम सुख है, क्योंकि जब अंहिसा व्रत का पालन करते हुए प्राणी अपनी इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है,उसका कोई शत्रु नहीं रहता तो उसके जीवन में परम सुख अर्थात मोक्ष का सुख भी शीघ्र प्राप्त हो जाता है।

सीमांत गांधी नाम से मशहूर खान अब्दुल गफ्फार खान ने गांधी की अहिंसा को व्यवहार में लाकर भारत के उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत में उग्र पठानों को अहिंसा के पुजारियों में बदल दिया था। बिनोवा भावे ने 1940 में एकल सत्याग्राही के रूप में आजादी का ध्वज उठाने और धनाढ्यों के हृदयों को करुणा और ईश्वर भक्ति की ओर मोड़ने में अहिंसा का उपयोग किया था। अहिंसा के जरिये विनाबा भावे ने भूदान आंदोलन चला कर लाखों भूपतियों से भूमि लेकर भूमिहीनों में बांटने में सफल रहे। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा था, मैं एक प्रभावशाली अहिंसक दृष्टिकोण में विश्वास करता हूं जिसमें मनुष्य हिंसा और धृणा के बिना सभी उपायों जैसे– धरने, प्रदर्शन, कानूनी प्रतिरोध, बहिष्कार, मतसंग्रह आदि से अन्यायी तंत्र के विरूद्ध लड़ सकता है। अफ्रीका के गांधी नेल्सन मंडेला ने भी अहिंसात्मक तरीकों की सार्थकता और अमोघता को दर्शाया है। उन्होंने त्याग और बलिदान का प्रदर्शन

किया और अन्यायपूर्ण कानूनों के खिलाफ 29 साल तक जेल में काटे ताकि जनत शांतिपूर्वक अपने अधिकार को हासिल कर सके। इसलिए शांति और अहिंसा का मार्ग ह सभी समस्यओं का सही निदान है। अहिंसा सभी धर्मों का सार है। महाभारत में लिखा है-

अहिंसापरमोधर्मः, अहिंसापरमतपः।

अहिंसापरमसत्य, यतोधर्मःप्रवर्ततते।।

महाभारत की तरह ही अन्य ग्रन्थों में जैसे पतंजलि के महाभाष्य में आत्मशुद्धि व उपकरणों में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया गया है। इसी प्रकार जैन, बौद्ध, ईसाई तथ मुस्लिम धार्मिक पुस्तकों और अन्य सभी पश्चिमी और पूर्वी विचारकों ने समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए अहिंसा पर बल दिया है

गाँधीजी ने अहिंसा की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा कि अहिंसा का अर्थ है ज्ञानपूर्वक कष्ट सहना, जिसका अर्थ अन्यायी की इच्छा के आगे झुककर घुटने टेक देना नहीं अपितु अत्याचारी की इच्छा के विरूद्ध अपनी आत्मा की सारी शक्ति लगा देना है। अहिंसा के माध्यम से गाँधी जी ने विश्व को संदेश दिया कि जीवन के इस नियम के अनुसार एक अकेला आदमी भी अपने सम्मान, धर्म, और आत्मा की रक्षा के लिए साम्राज्य के सम्पूर्ण बल को चुनौती दे सकता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन का कथन लोगों की जुबान पर है कि आने वाले समय में लोगों को सहज विश्वास नहीं होगा कि हाड़–मांस का एक ऐसा जीव था जिसने अहिंसा को अपना हथियार बनाया। अब अमेरिका भी मान चुका है कि गाँधी की विचारधारा से ही विश्व में अमन शांति की स्थापना की जा सकती है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अफ्रीकी महाद्वीप के 50 देशों के युवा नेताओं को संबोधित करते हुए कहा था कि आज के बदलते परिवेश में युवाओं को गाँधी जी से प्रेरणा लेने की जरूरत है।

सम्राट अशोक ने भी घोर हिंसा का भयानक परिणाम कलिंग–विजय के बाद देखकर ही, "अहिंसापरमोधर्मः" मानने वाले बुद्धमत को अपना लिया था। "अहिंसापरमोधर्मः" सिद्धांत को मानकर चलना कठिन नहीं है। इसके लिए सबके साथ उचित व्यवहार करें, असत्य से बचे रहकर सत्य बोलें, सत्य का मार्ग अपनाएँ, हानि पहुँचाना तो दूर की बात ऐसी बात सोचें भी न, सबकी सहायता के लिए तत्पर रहें, सदा सबका भला करें। अहिंसा का पालन करने वाला व्यक्ति न तो किसी का शत्रु होता है न कोई उसका शत्रु होता है। वह मानव का आदर करता है व आदर पाता है। वास्तव में हिंसा यदि शरीर की शक्ति है, तो

अहिंसा आत्मा की अदृश्य शक्ति है। आत्मिक शक्ति होने के कारण ही अहिंसा को सब धर्मों में श्रेष्ठ या परम धर्म माना गया है।

अहिंसापरमोधर्मः, अहिंसापरमोतपः। अहिंसापरमोसत्यं, यतोधर्मःप्रवर्तते।।
अहिंसापरमोधर्मः, अहिंसापरमोदमः। अहिंसापरमदानं, अहिंसापरमतपः।।
अहिंसापरमयज्ञः अहिंसापरमोफलम। अहिंसापरमंमित्रः,अहिंसापरमंसुखम।।

महाभारत / अनुशासनपर्व (115–23 / 116–28–29)

याद रखने वाली बात है अहिंसा का अर्थ है अकारण हिंसा न करना, जीव हत्या पाप है यदि अकारण हो किन्तु यदि वही जीव आप पर आक्रमण कर दे तो उसका वध करना ही उचित है, यदि कोई आप को या आपकी स्त्री को, कुटुंब को, गाय को और अन्यान्य प्राणियों को कष्ट पहुंचता है तो आपको भी हिंसा करनी पड़ेगी और उस समय वह धर्म होगा, बस आपकी ओर से हिंसा शुरू नहीं होनी चाहिए वो भी अकारण, तब ये अहिंसा ही धर्म बन जाती है। हिंसाओं के प्रमुख तीन कारण हैं [6]–

1. **व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण**–भोजन आदि ग्रहण करने में जो हिंसा होती है, उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ है क्योंकि भोजन से अपने शरीर की रक्षा होती है।
2. **परमार्थ के लिए हिंसा**–गांवों में हिंसक प्राणियों जैसे सिंह आदि की हिंसा परमार्थ के लिए होती है।
3. **उस प्राणी की सुख शान्ति के लिए हिंसा करना, जिसकी हिंसा की जाती है**–यदि किसी की अंगुलि में घाव हो गया हो और उसमें सड़न पैदा हो गई हो तो ऐसी हालत में डाक्टर द्वारा उसकी अंगुलियों को काटना हिंसा नहीं हो सकती, क्योंकि डाक्टर अंगुलियों को इसलिए काटता है कि उस व्यक्ति का घाव आगे नहीं बढ़े और न उसका सारा शरीर घावमय हो जाए।

गांधीजी द्वारा प्रतिपादित स्वराज की अवधारणा के तीन मुख्य तत्व हैं प्रथम–गांधीजी ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता की बात पर बल दिया है न कि सामूहिक स्वतन्त्रता पर। द्वितीय–स्वतन्त्रता का आधार अहिंसा है । अहिंसा के बिना स्वराज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। तृतीय–सत्य जो सभी धर्मों, नैतिकताओं, सामाजिकताओं से ऊपर है जो सर्वत्र विद्यमान है जो समस्त विनाश और परिवर्तन से परे है। हम सत्य, अहिंसा, ईश्वर में जीवन्त विश्वास के बिना राजनीतिक, आर्थिक स्वतन्त्रता तथा नैतिक व सामाजिक विकास प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

गांधीजी की मान्यता है कि अहिंसा का विचार कोई जड़ सिद्धान्त नहीं है, अपितु एक गत्यात्मक और नैतिक आस्था है। अतः विशिष्ट परिस्थितियों में अहिंसा का नियम किसी को न मारने के स्थूल विचार की अपेक्षा, दूसरों के प्रति निःस्वार्थ प्रेम और उन्हें पीड़ा व कष्ट से मुक्त करने की निर्मल प्रेरणा से निर्दिष्ट होता है। स्मरणीय है कि महात्मा गांधी स्वयं को व्यावहारिक आदर्शवादी कहते है।[7] अतः अहिंसा के सम्बन्ध में भी वे व्यावहारिक थे और इसलिए अहिंसा के सम्बन्ध में उनकी अवधारणा व्यवहार्य थी।

महात्मा गांधी ने अपनी नैतिकता के प्रकाश से सिर्फ भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व को आलोकित किया है। गांधीजी देश की आजादी के लिए जीवन का बलिदान देने के लिए तैयार थे किन्तु उसकी आजादी का अर्थ सिर्फ अंग्रेजों से मुक्ति नहीं थी। वे हिंसा, रक्तपात, असत्य, धोखेबाजी की कीमत पर आजादी नहीं चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि नैतिकता विहीन आजादी का कोई अर्थ नहीं। उन्होंने सिर्फ हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता ही नहीं दिलाई, बल्कि हमें एक वातावरण भी दिया जिसमें हम अपने नैतिक गुणों का विकास कर मनुष्यत्व को पा सकें।

ऐसा लगता है जैसे महात्मा गांधी का शरीर हाड़–मांस से निर्मित न होकर नैतिकता के अवयवों से निर्मित था। तभी तो उनके राजनैतिक गुरु गोखले का मानना था कि "जो लोग गांधी के संपर्क में आए हैं उन सबको इस पुरुष के अद्भुत व्यक्तित्व का एहसास अवश्य हुआ है। निस्संदेह वे इस धातु से बने हुए हैं जिस धातु से सूरमा और बलिदानी लोगों का निर्माण होता है, इतना कहना कम होगा। बल्कि उनमें वह अद्भुत आत्मिक शक्ति विद्यमान है जो उनके इर्द–गिर्द लोगों को सूरमा और बलिदानी बना देती है। ये ऐसे व्यक्ति हैं जिनके सामने कोई अशोभनीय कार्य करते हुए न केवल हमें शर्म आती है बल्कि जिनकी उपस्थिति में मन में भी कोई अशोभनीय बातें लाते डर लगता है। महात्मा गांधी के जीवन में सत्य का सर्वोच्च और उत्कृष्ट स्थान था कहना गलत होगा। सत्य ही उनका जीवन था यह भी शायद ठीक नहीं होगा। बल्कि सत्य और गांधी दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची प्रतीत होते हैं।

निर्विवाद रूप से गांधीजी विश्व स्तर पर प्रासंगिक हो गये हैं। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में निजीकरण, उदारीकरण और परमाणु अस्त्रों के अन्धाधुन्ध निर्माण ने गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता को प्रमाणित कर दिया है। गांधीजी को भूलने का ही यह दुष्परिणाम है कि राजनीति अनैतिकता, अवांछनीय तत्वों, छल–कपट, बेइमानी, गुण्डागर्दी का पर्याय हो गई है। मशीनों द्वारा फैलाई गई बेरोजगारी ने श्रम सिद्धान्त का महत्व

प्रतिपादित कर दिया है और सबसे अधिक पर्यावरणीय असंतुलन जो विश्वव्यापी समस्या बन चुका है, ने गांधीजी को स्वतः प्रासंगिक बना दिया है। मनुष्य की लालची वृत्ति ने उसे प्रकृति के मर्यादित दोहनकर्ता की अपेक्षा उसका निर्मम शोषणकर्ता बना दिया है। गांधीजी ने इस पर्यावरण संकट के पूर्व ही चेतावनी दी थी कि प्रकृति के पास इतना है कि वह सबकी आवश्यकताएँ पूरी कर सके, किन्तु एक व्यक्ति के लालच को पूरित करने की स्थिति में नहीं है।

गांधीजी के विचार आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि उनके विचार उपनिवेशवाद, तानाशाही, शोषणकारी प्रवृति, एक–दूसरे का गला काटने वाली प्रतिस्पर्धा से मुक्त हैं। वे सभी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व अन्य समस्याओं को आध्यात्मिक स्पर्श से निस्तारित करना चाहते थे। जिससे कि अन्त में प्रसन्नता व समृद्धि का वातावरण बने। चारों ओर शान्तिपूर्ण व्यवस्था कायम हो। उनके विचार सदैव से ही सम्पूर्ण मानव जाति के लिए श्रेष्ठ समाधान प्रस्तुत करते हैं।

❐

सन्दर्भ

1. *गांधी, मोहनदास करमचन्द, माडर्न रिव्यू, अक्टूबर 1935*
2. *सिंह, रामजी, गांधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना,1986, पृ.सं. 84*
3. *कमलापति त्रिपाठी, "अहिंसा", द्वितीय भाग, काशी विद्यापीठ प्रकाशन,वाराणसी, 1948, खण्ड 10, पृ. 168–169*
4. *गोपीनाथ धवन, "सर्वोदय तत्व दर्शन", नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदबाद, 1963, पृ. 74*
5. *कमलापति त्रिपाठी, "अहिंसा", द्वितीय भाग, काशी विद्यापीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1948, खण्ड 10, आमुख*
6. *कमलापति त्रिपाठी, "अहिंसा", प्रथम भाग, काशी विद्यापीठ प्रकाशन,वाराणसी, 1948, खण्ड 10, पृ 64–65*
7. *यंग इण्डिया 11–08–1920*